[illegible] चिनगारी

यशपाल

H
813.31
Y26 B

Bhasmavrutta Chingari

भस्मावृत्त चिन्गारी

तथा अन्य कहानियां Tatha anya Kahaniyan

•

यशपाल yashpal

Viplav Karyalay, Lucknow

विप्लव कार्यालय, लखनऊ

यशपाल के अन्य कहानी-संग्रह

पिंजरे की उड़ान
तर्क का तूफान
फूलो का कुर्त्ता
अभिशप्त
वो दुनिया
धर्मयुद्ध
उत्तराधिकारी
चित्र का शीर्षक
ज्ञानदान
तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं !
उत्तमी की मां
ओ भैरवी !
सच बोलने की भूल
खच्चर और आदमी

Library IIAS, Shimla
H 813.31 Y 26 B
00046479

6-00

विप्लव कार्यालय
२१, शिवाजी मार्ग लखनऊ
सातवां संस्करण • जनवरी १९६८ 1968

H
813.31
Y26B

पुस्तक के प्रकाशन और अनुवाद के
सर्वाधिकार लेखक द्वारा स्वरक्षित हैं ।

साथी प्रेस, लखनऊ में मुद्रित

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
4679
2-2-74

…असफलता और निराशा की राख पड़-पड़ कर तुम्हारे जीवन की चिंगारियां दबी चली जा रही हैं। मैं उन्हें फूंक कर सजग कर देना चाहता हूं।

…सम्मिलित जीवन से मुझे मोह है।

यशपाल

क्रम

भस्मावृत चिन्गारी	९
गुलाम की वीरता	२०
महादान	२७
गवाही	३०
वफ़ादारी की सनद	३६
वान हिण्डनबर्ग	४५
भाग्य-चक्र	५८
पुरुष भगवान	६८
देवी का वरदान	७३
इस टोपी को सलाम	८१
सत्य का मूल्य	८७
सआदत	९६
साग	१०३
पहाड़ का छल	१०७
घोड़ी की हाय	११४

बात यह है कि—

परिवर्तन के इस युग में हमारे प्रतिष्ठित साहित्यिक और कलाकार सतर्क और चिन्तित हैं। उन्हें भय है, उत्साह और उत्तेजना से मूढ़ नई पीढ़ी के साहित्यिकों और कलाकारों के हाथ में पड़ कर हमारी परम्परागत कला अपनी शुद्धता, प्रतिभा और प्रयोजन न खो बैठे। नई पीढ़ी के कलाकार कला के सभी रूपों, कविता, कहानी और चित्रकला का उपयोग, अपनी सूझ के अनुसार वर्तमान समस्याओं की अभिव्यक्ति और उनके हल के लिये निर्ममता और निरंकुशता से कर रहे हैं। प्रतिष्ठित कलाकारों की आशंका एक सीमा तक युक्तिसंगत है। उत्तेजना मूढ़ता और निरंकुशता से सभी वस्तुओं और साधनों का अनियमित प्रयोग भोंड़ा और बेढंगा हो सकता है। प्रश्न यही है कि नई पीढ़ी का कलाकार मूढ़ और निरंकुश है या नहीं ?

कला मनुष्य के भावों का परिमार्जित रूप है। ऐसा रूप जो कलाकार-व्यक्ति समाज के विचार चिंतन और उपयोग के लिये समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। स्थान और समय के भेद से जैसे मनुष्य के विचारों को प्रकट करने का मुख्य साधन भाषा पृथक-पृथक होती है वैसे ही स्थान और समय के अन्तर से भावों अथवा कला के प्रकट करने के साधनों या बाहरी रूप में अन्तर आ जाना आवश्यक है। स्थान और समय का दूसरा नाम है परिस्थितियां। परिस्थितियों से न केवल भाव को प्रकट करने वाले साधनों के रूप में अन्तर आ जाता है बल्कि भाव भी दूसरे प्रकार के हो जा सकते हैं। मनुष्य के भाव या भावना की परिभाषा की जाय तो हम उसे संक्षेप में मनुष्य की महत्वाकांक्षा कह सकते हैं। एक छोटी मछली की महत्वाकांक्षा मगरमच्छ बनने की हो सकती है और चींटी की महत्त्वाकांक्षा हाथी बनने की होगी—मगरमच्छ बनने की कल्पना शायद चींटी न कर सके।

मनुष्य की परिस्थितियों का प्रभाव न केवल कला की उत्पत्ति और रूप पर पड़ता है बल्कि कला के मूल्यांकन पर भी पड़ता है। कला का कौन रूप और कौन सीमा कुरुचिपूर्ण, वासनात्मक और प्रचारात्मक हो जाती यह बात

आलोचक और समाज के दृष्टिकोण पर निर्भर करती है—जैसे सभी मनुष्यों के लिये पथ्य एक ही वस्तु नहीं हो सकती। जैसे नग्नता के बारे में हमारा संस्कार और अभ्यास उचित-अनुचित का निश्चय करते हैं, वैसे ही वासना के सम्बन्ध में भी। किसी स्थान और समय में मुंह ढांक कर पेट उघाड़ा रखना लज्जाशीलता हो सकता है, दूसरे समय और स्थान में इससे ठीक उल्टे।

हमारे चरित्रवान पूर्वजों के सुसंस्कृत साहित्य में नारी को 'मोहिनी', 'सुमुखी' और 'नितम्बिनी' सम्बोधन करना शालीनता थी। आज हमारे हीन चरित्र समाज में किसी स्त्री को उसके मुख पर 'सुन्दरी' कहना जूतों की मार को निमंत्रण देना है। महाकवि कालिदास का नारी की रोमांचित जंघा का वर्णन करना, हर और सती की रतिक्रिया का चित्रण न अश्लील समझा गया न वासनात्मक परन्तु यदि आज का लेखक नारी के वस्त्रों के भीतर दृष्टि मात्र पहुंचाने का प्रयत्न करता है तो भी वह नैतिकता का शत्रु समझा जाता है। इस पर हमें सन्ताप यह है कि हम नैतिकता की दृष्टि से अपने पूर्वजों की अपेक्षा बहुत गिरते जा रहे हैं। सम्भवतः कारण यह है कि वासना को चरितार्थ करने की क्षमता हम में अपने पूर्वजों के समान नहीं रह गयी है। मन्दाग्नि के रोगी के समान घी हमारे लिये विष हो गया है। सदाचार और नैतिकता का एक दृष्टिकोण और मानदण्ड हमारे पूर्वजों के सामने भी था और एक हमारे सामने भी है।

इसी प्रकार प्रचार की भी समस्या है। कलाकार के भाव और कल्पना जीवन के अनुभवों की भूमि पर ही खड़े हो सकते हैं। यदि कला में जीवन की समस्या का आना दोष है तो फिर कला का प्रत्यक्ष रूप है क्या? किसी भी कलाकार की कृति जीवन का एक रूप पाये बिना प्रकट नहीं हो सकती। प्रश्न है—कला में प्रकट जीवन का रूप किस समस्या का सन्देश देता है? भावशून्य, सन्देशशून्य कला को क्या हम कला कह सकते हैं? यहां भी निर्णय का आधार हमारे संस्कार और अभ्यास ही हैं। जिन भावों और सन्देशों को हम परम्परा और अभ्यास से स्वीकार करते आये हैं, कला में उनका समावेश हमें केवल शाश्वत सत्य की प्रतिष्ठा जान पड़ता है, प्रचार नहीं। स्वामी की सेवा में सेवक के जान पर खेल जाने का करुण चित्रण हमारी कलात्मक वृत्तियों को गुदगुदा कर सद्वृत्तियों को जगाने वाला समझा जाता है। वह हमें प्रचार नहीं जान पड़ता। दुश्चरित्र पति की निन्दा न सुनने के लिये पतिव्रता के कान मूंद लेने

की कहानी हमें केवल आदर्श जीवन की प्रतिष्ठा ही जान पड़ती है, प्रचार नहीं। परन्तु जब आज का कलाकार अन्नदाता स्वामी के लिये सेवक के प्राण-त्याग की भावना का विद्रूप कर उसकी उपमा कुत्ते से देता है तो यह न्याय और कुतर्क जान पड़ता है। इसी प्रकार जब आज का कहानी लेखक मध्यम श्रेणी की एक सम्मानित महिला और वेश्या में यही अन्तर देखता है कि सम्मानित महिला का पालन केवल एक व्यक्ति करता है और वेश्या का पालन अनेक व्यक्ति करते हैं, तब आज के लेखक पर घोर अनाचार के प्रचार का दोष लगाया जाता है।

हमारे पूर्वज साहित्यिक की दृष्टि में वंश उत्पत्ति के स्रोत नारी की शुद्धता सबसे अधिक महत्व की वस्तु थी। वह दृष्टिकोण और प्रयोजन नैतिक था, यह हम स्वीकार करते हैं परन्तु आज के लेखक का भी एक प्रयोजन हो सकता है—वह चाहता है हमारे समाज का आधा भाग नारी समाज भी आज के कठिन संघर्ष में अपने आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक दायित्व को समझे और वह केवल पुरुष के कन्धों पर बोझ ही न बनी रहे।

कला और साहित्य का उद्देश्य सभी अवस्थाओं में मनुष्य में नैतिकता और कर्तव्य की प्रवृत्तियों की चिन्गारियों को भावना की फूंक मार कर सुलगाना ही रहता है। अन्तर रहता है, हमारे विश्वास और दृष्टिकोण में। कभी हम समझते हैं इन चिन्गारियों से निकली ज्वाला प्रकाश कर मार्ग दिखायेगी, कभी हम समझते कि यह ज्वाला हमारे समाज की रक्षा करने वाले छप्पर को फूंक कर राख कर देगी।

विप्लव
२ जुलाई, ४६

यशपाल

भस्मावृत्त चिन्गारी

वह मेरे पड़ोस में रहता था। उसके प्रति मुझे एक प्रकार की श्रद्धा थी। उसका व्यवहार एक रहस्य के कोहरे से घिरा था। रहस्य बनावट का नहीं जो आशंकित कर देता है; सरलता का रहस्य, जो आकर्षण और सहानुभूति पैदा करता है। वह साधारण से भिन्न था, शायद साधारण से कुछ ऊँचा।

उसके बड़े और छोटे भाइयों ने अपने श्रम से पिता की कमाई सम्पत्ति की बुनियाद पर स्वतंत्र कारोबार की इमारतें सफलतापूर्वक खड़ी कर ली थीं। वे सफल गृहस्थ और सम्मानित नागरिक बन गये थे। वे पुराने परिवार-वृक्ष की कलमों के रूप में नयी भूमि पा, नये परिवारों की लहलहाती शाखाओं के रूप में कल्ला उठे थे। पिता को अपने दोनों पुत्रों की सफलता पर गर्व और संतोष था।

और 'वह' सब सुविधा और अवसर होने पर और अपने शैथिल्य के कारण पिता की अधिक करुणा पाकर भी कुछ न बन सका। उसने यत्न ही नहीं किया। उसके पिता को इससे उदासी और निरुत्साह हुआ; परन्तु मैं उसका आदर करता था। उसमें लोभ न था। वह संतोष की मूर्ति था। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा उसमें न थी। वह त्यागी था। यही तो तपस्या है।

पिता की मृत्यु के बाद दोनों कर्मठ व्यापारी भाइयों ने हजारों की आमदनी होते हुए भी जब उत्तराधिकार की सम्पत्ति के बटवारे में पाई-पाई का हिसाब कर, उसे केवल दो पुराने मकान देकर ही निबटा दिया; उसने कोई चिन्ता या व्यग्रता प्रकट न की। भाइयों की अपने से दस-बीस गुना अधिक आमदनी के प्रति उसे कभी ईर्षा करते नहीं देखा। घर में अर्थ-संकट अनुभव करके भी उसे कभी विचलित होते नहीं देखा। उसकी शान्त और सौन्दर्य

की वृत्ति सभी जगह शान्ति और सौन्दर्य पा सकती थी। इनका स्रोत उसके भीतर था। वह अन्तर्मुख और आत्मरत था। कला के लिए उसका जीवन था और कला ही उसके प्राण थी। कला से किसी प्रकार की स्वार्थ साधना उसे कला का अपमान जान पड़ता था।

उसके परिचय का क्षेत्र अधिक विस्तृत न था। परिचय से उसे घबड़ाहट होती थी। उसके चित्रों से प्रभावित होकर मैंने स्वयं ही उससे परिचय किया था। वह कुछ सकुचाया और फिर जैसे उसने मुझे सह लिया और आन्तरिकता भी बढ़ती गयी। कभी वह संध्या, दोपहर या बिलकुल तड़के ही आ बैठता। उसका समय कोई निश्चित न था। कभी अकेले ही शहर से चार-पाँच मील दूर जाकर बैठा रहता। उसका सब समय प्रायः किर्मिच मढ़ी टिकटी के आस-पास रंग-घुली प्यालियों और कूचियों के चक्कर में बीत जाता था।

वह बहुत कम बोलता था। जब बोलता उसमें बहुत-सी विचित्र बातें रहती थीं। सहमत हुए बिना भी उनकी कद्र करनी पड़ती थी। क्योंकि वह एक असाधारण व्यक्ति की बातें थीं। सूख कर ऐंठ गये पत्तों और सूर्य की किरणों में मकड़ी के जाले पर झलमलाती ओस की बूंदों में उसे जाने क्या-क्या दीखता था ?·····वह उनमें खो जाता था।

एक दिन मई महीने में ठीक दोपहर के समय मोटर में छावनी से लौट रहा था। सूर्य की किरणों से वाष्प बन रही धूल में, बियावान सड़क पर उसे अकेले शहर की ओर लौटते देखा। उसके समीप गाड़ी रोक कर पुकारा—"इस समय कहां ?"

"ऐसे ही जरा घूमने निकला था" उत्तर मिला।

विस्मयाहत होकर पूछा, "इस धूप में ?" कार का दरवाजा उसके लिए खोल कर आग्रह किया, "आओ !"

"नहीं, तुम चलो !" अपनी धोती का छोर थामे, मेरे विस्मय की ओर ध्यान दिये बिना उसने उत्तर दिया।

एक तरह से जबरन ही उसे गाड़ी में बैठा लिया। मजबूरी की हालत में मेरे समीप कुछ क्षण चुपचाप बैठकर उसने धीमे से कहा—"देखो कितना सुन्दर है····· जैसे पालिश की हुई चांदी फैल गई हो ! जैसे·····जैसे···बरफ पड़ जाने के बाद उसका गुण बदल गया हो·····white heat (श्वेत उत्ताप) और देखो, तरल गरमी की लपटें कैसे पृथ्वी से आकाश की ओर उठ रही हैं; जैसे

पृथ्वी गरमी के तारों से धुनी जाकर आकाश की ओर उड़ी जा रही है। मेरी ओर दृष्टि कर उसने कहा—"जरा यह काला चश्मा उतार कर देखो !"

मजबूरन चश्मा उतारना पड़ा। आंखों में जैसे तीर से चुभ गये। और फिर जो उसने कहा था ठीक भी जंचने लगा। सोचा, कितना असाधारण है यह व्यक्ति ? यह शायद संसार के लिये एक विभूति है।

ऐसे ही एक दूसरे दिन शरद ऋतु की संध्या के समय बड़े पार्क के किनारे वृक्षों के नीचे से, सूखी घास पर गिरे सूखे, कुड़मुड़ाये पत्तों को रौंदते धोती का छोर थामे, अपना फटा पम्प शू रगड़ते उसे उतावली में चले जाते देखा।

पुकारा। उसने सुना नहीं।

अगले दिन उसके यहां जाकर देखा, वह तन्मय किमिच-मढ़ी टिकटी के सामने खड़ा कूची से रंग लगा रहा है। बहुत ही सुन्दर चित्र था—हाल में अस्त हुए सूर्य की गहरी, सिन्दूरी आभा आकाश में अर्धवृत्ताकार फैल रही थी। उस पृष्ठ-भूमि पर आकाश की ओर उठी हुई उंगली की तरह एक सूखे पेड़ की टहनी पर श्याम चिरैया का जोड़ा प्रणयाकुल हो रहा था।

विस्मय-मुग्ध नेत्रों से कुछ देर तक चित्र को देखकर उससे पूछा—"कल तुम पार्क के समीप से जा रहे थे, पुकारा तो तुमने सुना ही नहीं।"

प्रश्नात्मक दृष्टि से उसने मेरी ओर देख, कुछ सोचकर उत्तर दिया—"कल पार्क में चिड़िया के जोड़े को इस प्रकार देखा और वह तुरन्त ही उड़ गया·····। सोचा इस चीज को यदि स्थायी रूप दे सकूं·····।"

× × ×

उसके अनेक चित्रों 'निर्वासन', 'गौरीशंकर', 'गंगा और सागर' ने प्रसिद्धि नहीं पाई परन्तु विश्वास से कह सकता हूं, जिस दिन पारखी आंखें उन चित्रों को देख पायेंगी, संसार चकित रह जायेगा। मुझे गर्व था ऐसे प्रतिभाशाली कलाकार की मैत्री का।

मेरा विचार था, वह सांसारिकता से तटस्थ है; भावुकता के साम्राज्य में ही वह रहता है। परन्तु एक दिन हम उसी के मकान पर बैठे थे। वह न जाने किस विचार में खो गया। उस चुप से उकता कर भी विघ्न न डाला। सोचा, न जाने किस अमूल्य कृति के अंकुर इसके मस्तिष्क में जन्म पा रहे हों ?

समीप के जीने पर उसकी साढ़े तीन बरस की लड़की खेल रही थी। वह अलापने लगी—'पापा···पापा···पापा !' मानों नींद से जाग कर उसने कहा, 'how sweet—कितना मधुर·····?' समझा कलाकार भी मनुष्य होता है।

लक्ष्मी के लिये विद्वानों ने चपला शब्द ठीक ही प्रयोग किया है। वह स्थिर नहीं रहती। कलाकार के एक मकान में भूतों ने डेरा डाल दिया और उसका किराये पर उठना कठिन हो गया। उसकी आमदनी कम होती थी। अच्छे-भले मध्यम श्रेणी के खाते-पीते आदमी से उसकी हालत खस्ता हो गयी परन्तु उस ओर उसका ध्यान न गया। उपाय सुझाने और स्वयं उपाय कर देने के लिये तैयार होने पर भी उसने इस बात को महत्व न दिया। उसे इससे कोई मतलब न था। त्याग और तपस्या क्या दूसरी चीज होती है ?

दूसरे बालक के प्रसव से पहले उसकी स्त्री बीमार हो गई। वह बीमारी असाधारण थी। खर्च भी असाधारण था। दो महीने में साढ़े तीन हजार रुपया खर्च हो गया। एक मकान पहले से गिरवी था, दूसरा भी गया। कोई शिकायत उसे न थी। उसने केवल इतना कहा—"यदि रुपये से मनुष्य के प्राण बच सकते हैं तो वह किसी भी मूल्य पर महंगा नहीं। किसी तरह स्त्री के प्राण बचे।"

इस दारुण संकट के बाद कलाकार की अवस्था और भी शोचनीय हो गयी परन्तु उसकी तटस्थता में किसी प्रकार का परिवर्तन न आया। फटी चप्पल में भी वह इतना ही सन्तुष्ट था जितना कि कि ग्लेसकिड के पम्प शू पहने रहने पर।

अनेक दिन तक वह दिखायी न दिया। सुना एक चित्र में व्यस्त है। विघ्न न डालने के विचार से उसके घर भी न गया। मालूम होने पर कि नया चित्र पूरा हो गया, देखने गया।

चित्र का नाम था—'जन्म-मरण।' चित्र में प्रसूतिगृह का दृश्य था और शैय्या पर स्वयं उसकी स्त्री। रोगिणी के जीर्ण, चरम पीड़ा से व्यथित मुख पर मृत्यु का आतंक। उसकी आंखें नवजात शिशु की ओर लगी थीं जो उसकी पीड़ा और यंत्रणा के मेघ से नक्षत्र की भांति अभी ही प्रकट हुआ था। प्रसूता के नेत्र प्रभात के आकाश की भांति कुहासे से धुंधले थे और उसकी पुतलियां बुझते हुये तारों की भाँति निस्तेज हो रही थीं। उस दिन इस चित्र को देख चुप रह गया। कुछ कह सकना भी सम्भव न था परन्तु अनेक दिन तक इस चित्र की स्मृति मस्तिष्क से न उतरी।

समाचार पत्रों में पढ़ा, बम्बई में अखिल भारतीय चित्र-प्रदर्शनी होने जा रही है। कलाकार के सम्मुख उस के चित्र प्रदर्शनी में भेजने का प्रस्ताव किया। उसे उत्साह न था। उस का विश्वास था, स्वयं कला की पूर्णता में ही कला की साधना का फल है।

तर्क अनेक हो सकते हैं। समझाया—कलाकार की प्रतिभा यदि केवल उस के निजी सन्तोष के लिये ही सीमित न रह कर दूसरों के सन्तोष का भी कारण बन सके तो क्या हानि ?

बहुत अनुरोध कर उन चित्रों को अपने खर्च पर बम्बई भिजवाया। प्रायः पन्द्रह दिन बाद प्रदर्शनी के संयोजकों का तार मिला—"युरोप का कोई व्यापारी 'जन्म-मरण' चित्र के लिये पांच हजार रुपया कीमत देने के लिए तैयार है।"

चित्र मेरी ओर से भेजे गये थे इसलिये तार भी मेरे ही नाम आया था। कलाकार की प्रकृति जानने के कारण यह प्रस्ताव उस के सम्मुख रखने में बहुत संकोच हो रहा था परन्तु यह भी विचार था कि यदि इस चित्र के मूल्य से एक दुखी परिवार का क्लेश दूर हो सकता है तो यह कला का अपमान नहीं है। यह भी सोचा—जो व्यक्ति अपनी कमाई का पाँच हजार रुपया चित्र में अंकित कला और भावना के लिये न्योछावर कर रहा है, वह कलाकार की प्रतिभा और भावना दोनों का ही सत्कार कर रहा है। बहुत सम्भल कर, अत्यन्त संकोच से वह प्रस्ताव उस के सामने रखा। परिणाम वही हुआ जिस की आशा थी।

तार से सौदा नामंजूर होने की सूचना दे दी। उत्तर आया, ग्राहक दस हजार देने को तैयार है। इस बार और भी अधिक संकोच से कलाकार को सूचना दी। उस ने उत्तर दिया—"मैं नहीं चाहता था उन चित्रों को प्रदर्शनी में भेजा जाय। न मैं अपनी भावना का कोई मूल्य स्वीकार करने के लिये तैयार हूं। तुम उन चित्रों को वापिस मंगवालो !"

क्रियात्मक क्षेत्र में इसे अव्यवहारिक समझ कर भी कलाकार की त्याग भावना और निस्वार्थ कला-साधना के प्रति मेरे मन में आदर का भाव बढ़ गया। कलाकार की निष्ठा के प्रत्यक्ष उदाहरण से स्वीकार करना पड़ा, कला जीवन से भी ऊंची वस्तु है, बेशक साधारण जन की पहुंच वहां तक नहीं परन्तु उस कला का अस्तित्व है अवश्य। सांसारिक स्थूलता में लिप्त रह कर हम उस कला के अतीन्द्रिय, सूक्ष्म सन्तोष को पा नहीं सकते। यह न्यूनता कला

की नहीं, हमारी अपनी अयोग्यता है। वह कला उसी प्रकार अनादि, अनन्त है जैसे आत्मा और अपौरुषेय शक्ति का अस्तित्व है। आप्त पुरुषों के अनुभव से ही साधारण पुरुष उसे समझ सकते हैं। कलाकार का सन्तोष इस का अकाट्य प्रमाण था। उस कला की अर्चना में कलाकार के परिवार का बलिदान इस सत्य का प्रमाण था कि कला से प्राप्त सन्तोष जीवन रक्षा की भावना से भी अधिक प्रबल और महान है।

मैं स्वयं कला को वेदी से दूर हूं। सांसारिकता की अड़चनों से छन कर आये कला के प्रकाश की सूक्ष्म किरणों को ही मैं पा सका हूं। मैं कला की आराधना उस के पुजारी के प्रति अपनी श्रद्धा और आदर से ही कर सकता था; जैसे यजमान पुरोहित द्वारा यज्ञ कार्य का पुण्य प्राप्त करता है। मेरी उस श्रद्धा का स्थूल रूप था, कला के पुरोहित कलाकार की सेवा के लिए तत्परता।

× × ×

कलाकार की स्त्री शनैः-शनैः बलि होते-होते एक दिन नवजात शिशु को छोड़ चल बसी। कलाकार शोक के आघात से कुछ दिन संज्ञाहीन सा रहा। उस के पुत्र को स्त्री के भाई ले गये। संज्ञा लौटने पर कलाकार के होठों पर एक मुस्कराहट आ गई। उस ने एक और चित्र बनाया—एक प्रकाण्ड हिमस्तूप की दुरारोह चढ़ाई पर एक क्षीण शरीर तपस्वी चढ़ रहा है। उस की जीवन संगिनी चढ़ाई में क्लान्त और जर्जर होकर गिर पड़ी है। तपस्वी यात्री दुविधा में है। वह घूम कर अपनी बरफ पर गिर पड़ी निष्प्राण संगिनी की ओर देखता है। दूसरी ओर हिमस्तूप का शिखिर सप्राण-सा हो उसे अपनी ओर आह्वान कर रहा है·····।

इस चित्र की भाव-गरिमा से मैं अवाक् रह गया। चित्र क्या था, कलाकार की कूची से उस के जीवन की कहानी और उस के त्याग की महत्वाकांक्षा, कला के प्रति उस का सगर्व आत्म-समर्पण था। मैं अभिभूत रह गया; उस महान उद्देश्य से परे लघु जीवन की बात क्या ?

फिर भी शंकालु मस्तिष्क में प्रश्न उठ ही आता था—कला की शक्ति जीवन में किस प्रकार चरितार्थ होनी चाहिए ? कलाकार ने अपना उत्तर रेखा के स्वरों में लिख कर चित्रपट पर स्थिर कर दिया था। प्रश्न करने पर उस ने कहा—

"अंधेरे आंगन में एक दीप जलता है। उस दीपक का आलोक बहुत दूर से भी दिखाई पड़ता है और समीप से भी। दीपक की लौ के समीप आते-जाने से प्रकाश को उज्ज्वलता मिलती है और दृष्टि को सुस्पष्टता परन्तु यह दीपक को प्राप्त कर लेना नहीं है। प्रकाश के इस केन्द्र में है केवल अग्नि।···जो तेल और बत्ती को जलाती है।

"दीपक की लौ प्रकाश की और देखने वाले पथिकों की चिन्ता नहीं करती और दीपक जलता रहने के लिए तेल और बत्ती का जलते रहना आवश्यक है।"

कलाकार का शरीर दारिद्र्य और अवसाद से क्षीण होता गया परन्तु उस के नेत्रों की प्रखरता बढ़ती गई। वह अपनी साधना में रत था। जितना ही गहरा मूल्य वह अपनी इस आराधना के लिए अदा कर रहा था, उसी अनुपात में उस की निष्ठा बढ़ती जा रही थी।

× × ×

बहुत सुबह उठने का अभ्यास मुझे नहीं है, विशेष कर माघ की सर्दी में परन्तु पिछले दिन थकावट अधिक हो जाने के कारण समय से एक घण्टे पूर्व सो गया था इसलिए उठा भी कुछ पहले। समय होने से बरामदे में खड़ा सामने फुलवाड़ी की ओर देख रहा था, माली कुछ करता भी है या नहीं।

सुबह-सुबह गरम कपड़े पहने, हिरन के खुर जैसे छोटे-छोटे जूतों से खुट-खुट करते बन्नो ने आकर मेरी उंगली थाम ली—"पापा, अम छैर कन्ने जा रए हैं। पापा भैया भी गाड़ी में जारा है। राधा भी जा रई है। पापा, तुम तुम भी चलो ?"

श्रीमती जी शाल में लिपटी बैठी रहती हैं परन्तु बच्चों को सुबह ही गरम कपड़े पहना कर आया राधा के साथ सूर्य की प्रथम किरणों के सेवन के लिए सड़क पर भेज देती हैं। कारण—हमारा क्या है; परन्तु बच्चों का स्वास्थ्य ही तो सब कुछ है।

बन्नो मुझे उंगली से खींचे लिये जा रही थी, जैसे ऊंट की नकेल थामे उसका सवार आगे-आगे चला जा रहा हो। चेस्टर में सर्दी से सिकुड़ता हुआ बेटी की आज्ञा के अनुगत चला जा रहा था। वह मुझे सड़क तक ले आई और छोड़ना न चाहती थी। रात की पोशाक के धारीदार पायजामे में यों आगे

जाना उचित न था। बन्नो को बहलाने के लिए इधर-उधर देख रहा था।

हमारे बंगले से लगी बायीं ओर की जमीन खां साहब ने ली थी। वह दस बरस से यों ही पड़ी है। उस जमीन पर चार-दीवारी तक नहीं खींची गयी थी। अपने बंगले की चार-दीवारी की पुश्त पर दृष्टि पड़ी।

देखा सूर्य की प्रथम किरणों में, दीवार के साथ उग आये ओस से भीगे झाड़-झंखाड़ में, एक फटी दरी के तिहाई टुकड़े पर मनुष्य के शरीर का काला ढांचा-मात्र पड़ा है; समीप टीन का एक डिब्बा और रोटी का ऐंठा हुआ टुकड़ा है। सूती कम्बल का एक टुकड़ा भी जो शरीर से नीचे खिसक आया था, ढांचे पर पड़ा था। इस सर्दी में वस्त्र संभालने की सुध उस शरीर में न थी।

क्षण भर में उसके पूर्व इतिहास की कल्पना मस्तिष्क में कौंध गयी—कोई भिखमंगा रात बिता रहा होगा, जाड़े में ऐंठ गया। शरीर निश्चेष्ट था। शायद मर गया ?

बच्चों को तुरन्त उस दृश्य से हटाने के लिए राधा के साथ आगे भेज दिया। समीप जाकर देखा। हाथ से स्पर्श करने में आशंका हुई; शायद कोई छूत की बीमारी हो ? परन्तु था तो वह भी मनुष्य ही। छूकर देखा, बहुत क्षीण ऊं-ऊं स्वर। कराहट सी सुनाई दी। अभी प्राण थे।

मनुष्य के प्रति करुणा और भय से मन विचलित हो गया। तुरन्त लौट कर हेल्थ-आफिसर अरोड़ा साहब को फोन किया। म्युनिसिपैलिटी की एम्बुलेंस आ गयी। अपनी गाड़ी में मैं भी हस्पताल साथ गया। इधर-उधर कह-सुन कर उसे भरती करवा दिया। दो घण्टे बाद वह हस्पताल के गद्देदार पलंग पर लेटा था। गरम पानी की बोतलें उसके पांव और बगल में रख दी गई थीं। टोंटीदार प्याले से उसके मुंह में ब्राण्डी मिला दूध दिया जा रहा था।

लौटा तो दोपहर हो रही थी। अपने काम का हर्ज अवश्य हुआ परन्तु सन्तोष था। बंगले के भीतर गाड़ी घुमाने से पहले, बंगले की बायीं ओर की खुली जमीन के सामने कलाकार को परेशानी की सी हालत में भटकी नजरों से कुछ खोजते देखा।

कलाकार के समीप जा पुकारा—"अरे भाई, तुम्हें कैसे मालूम हुआ !··· आज सुबह अचानक मेरी दृष्टि पड़ गई। कुल घण्टे भर का मेहमान था। अब भी बच जाय तो बड़ी बात जानो·····ओफ मनुष्य का भी क्या है ?·····

उसी भटकी मुद्रा में कलाकार ने पूछा—"कहां गया वह ?"

"अरे भाई उसे ही हस्पताल पहुंचा कर आ रहा हूं। बड़ी मुश्किल से डाक्टर से कह-सुनकर भरती कराया···समझो लिहाज था !"

वह जैसे प्रबल निराशा से हताश होकर लौट पड़ा। अनेक बार बुलाने पर भी उसने लौट कर नहीं सुना। बहुत दूर तक मैं पैदल उसके पीछे गया। उसने पलट कर देखा नहीं। बेबसी में लौट आया।

सन्ध्या समय एक जगह जाना जरूरी था परन्तु कम्पनी की डाक भी जरूरी थी। शीघ्रता से कागज देख-देख कर दस्तखत करता जा रहा था कि कलाकार चौखटे में मढ़ी किर्मिच लिए कमरे में आ घुसा।

किर्मिच को मेरी ही मेज पर रख कर क्षोभ भरे स्वर में उसने कहा—"दो दिन से इसे बना रहा था। तुमने बेड़ा गर्क कर दिया। अब तुम्हीं इसे संभालो !" अधूरे चित्र को छोड़कर वह लौट गया।

किर्मिच पर अधबने चित्र में सुबह का दृश्य जाग उठा था, वही मृतप्राय भिखमंगा। काले चमड़े से मढ़ा उसका पंजर फटी दरी के टुकड़े पर एड़ियां रगड़ता हुआ कला के जादू से अधिक वीभत्स हो उठा था। उसके हाथ, खुले होंठ और हताश आंखें गुहार में आकाश की ओर उठी हुई थीं। चित्र अभी अपूर्ण था परन्तु उसकी उग्र वीभत्सता अत्यन्त सजीव थी। पेंसिल की घसीट में चित्र पर उसका शीर्षक लिखा था—'भस्मावृत चिन्गारी !'

कलाकार दो दिन से इस चित्र को बना रहा था। दो दिन से वह म्रियमाण नर-कंकाल मृत्यु की यातना सह रहा था कि कला जीवन की चिन्गारी के मृत्यु की भस्म से आच्छादित होकर बुझने का दृश्य अपनी सम्पूर्ण दारुण वीभत्सता के सौन्दर्य सहित प्रस्तुत कर सके।

उस नर-कंकाल को उसकी ठण्डी चिता से हस्पताल के पलंग पर हटाकर मैंने कला की पूर्ति में व्याघात डाल दिया था। मेरा यह अनाचार कलाकार के लिए असह्य था।

चित्र में मृत्यु की यातना से गुहार के लिए उठे हुए नर-कंकाल के हाथों से कला मेरे अनाचार के प्रति दुहाई दे रही थी·····। कला की आत्मा मेरी भर्त्सना कर रही थी। मैं कला के सम्मुख अपराधी था।

मेरा दुर्भाग्य यह कि मुझे अपने अपराध के लिए पश्चाताप का साहस भी नहीं।

वह चित्र, मानवता का चित्र अब भी वैसा ही है ।

कलाकार क्षुब्ध है ।

कला अपूर्ण है·····शायद पूर्णता की प्रतीक्षा में है ।

गुलाम की वीरता

सबसे दुखी परबस। इसलिए कि उसे अपना दुख दूर करने का अवसर नहीं रहता। उसकी सामर्थ्य, चेतना और सूझ अपना दुख दूर करने के प्रयत्न में नहीं, दुख अनुभव करने और सहने में ही व्यय होती है।

कहने को तो बस गरमी थी—वर्षा न होने से असाधारण गरमी! आसाढ़ भर तपता ही रहा था। बादल घिर आते परन्तु बरसते नहीं थे। केवल हवा रुक कर घुट सी जाती थी। इस पर जेल! दीवारों और पेड़ों की चोटियों पर सूर्य की किरणें रहते बारिक में बन्द हो जाना पड़ता था।

गरमी, गरमी में बेबसी, परवशता। कैदी उन्मुक्त श्वास और शरीर पर वायु का स्पर्श पाने के लिये बारिक के जंगलों के पास आ घिरते थे। गरमी से जेल के कुओं में पानी कम पड़ गया था। शरीर का पसीना शरीर पर सूख जाने से कैदियों की त्वचा कड़ी और झामे की तरह खुरदरी हो गई थी। खिज-लाहट से कैदियों के नाखून अपनी ही खाल खुरच डालते थे।

बारिक के दस जंगलों के सामने बहत्तर कैदियों के लेटने के लिए स्थान न था। कभी सख्त मिजाज, कानूनी जमादार रौंद की ड्यूटी पर होते तो कैदियों को जंगले के समीप बैठने या उसे छू लेने का भी अवसर न रहता। उन्हें कैदियों के व्यवहार में जंगला काटने की नीयत दिखाई देने लगती। कैदी ओटे (मिट्टी का आधा हाथ ऊँचा चौतरा) पर लेटे अंगोछे या अपने हिस्ट्री टिकट से बदन पर हवा करते रहते और अवर्षा से जेल की गर्मी में बेबसी और घर पर फसल की बरबादी की चर्चा करते रहते।

जेल में तौल से पूरी नौ छटांक रोटी मिल जाने पर भी कैदियों की आंखों

में अवर्षा से दुर्भिक्ष का त्रास छा रहा था। अनेक दिन वर्षा होने के सम्बन्ध में शर्तें लगती रही थीं। अनेक कैदियों ने अपने नाश्ते के चने, अपनी रोटी, विशेष यत्न और चोरी से मंगाया बीड़ी-तम्बाकू वर्षा की आशा पर हार दिया परन्तु दैव न पिघला।

सावन की तीज का दिन था। बारिक बन्द हो चुकी थी। आकाश में घने बादल छाये थे। पर सन्ध्या का अंधेरा होने में बहुत देर थी। आंधी आ गई। ऐसी आंधी आसाढ़ में कितनी ही बार आ चुकी थी। आंधी से वर्षा की आशा होती थी परन्तु अनेक बार निराश हो जाने पर कैदियों ने आंधी में वर्षा का सन्देश न समझा। कुछ देर पहले बारिक के जंगलों से शांति का झोंका मिल रहा था अब वहां से धूल के बादल आने लगे। जेल की बारिक की यह विशेषता है कि गर्मी में वह अस्तबल की तरह घुटी रहती है और आंधी-पानी में पिंजरे की तरह खुली। जंगलों से और छितरे खपरैलों की संधियों से मिट्टी और नीम के सूखे पत्ते गिर-गिर कर नाक, आंखों और दांतों में धूल ही धूल भर गई। कैदियों ने ओटों पर शरण ली। किसी ने कम्बल से, किसी ने अंगौछे से नाक-मुंह ढंका। आंधी को सम्बोधन कर गालियां सुनाई देने लगीं। जिन जंगलों के समीप स्थान के लिए लड़ाई में लोहे के तसलों से बीसियों कैदियों के सिर फूट चुके थे, अब खाली पड़े थे।

छत की खपरैलों पर आहट सुनाई दी। निराश हृदयों ने उसे पहले आंधी से उड़कर आये कंकरों और निबौरियों की बौछार मात्र समझा परन्तु वे बूंदें थीं। बूंदें-बूंदें! मेंह-मेंह! बारिश!···सब ओर शोर मच गया। कैदी बारिक के जंगलों की ओर लपक पड़े। जैसे चिड़िया घर में जंगले से भीतर चना डाला जाने पर सभी बन्दर इकट्ठे हो जाते हैं।

मैं राजनैतिक कैदी होने की गरिमा में अपने टाट-फट्टे पर लेटा रहा।

बारिश हुई और जोर की बारिश हुई। पहले प्यासी धरती ने जल पाकर गरम उसांसें लीं और वह जल पी गई। परन्तु कुछ ही क्षण में जल की पतली चौड़ी धारें बह निकलीं और अहाता ताल की भांति भर गया। अब भी भारी बूंदों से वर्षा जारी थी। जल की बूंदों की चोट से जल की सतह पर लाखों चकरियां नाच रही थीं।

वर्षा का कौतूहल शान्त हो जाने पर जंगले फिर खाली हो गये। खपरैल की झीनी छत खूब टपक रही थी। रौंद की ड्यूटी का जमादार नरम तबीयत

का था। उसने कैदियों को टपकन के नीचे अपने ओटों पर ही बैठे या लेटे रहने पर जोर नहीं दिया। बस इतना खयाल था कि जेलर या बड़े साहब की रौंद की रपट मिलने पर सब कैदी अपने-अपने ओटों पर चुपके से लेट जायं। कैदी टपकन से बचने के लिए टोलियां बनाकर जगह-जगह बैठे थे। हथेली पर सुरती मल कर झाड़ने से फट-फट आहट हो रही थी।

कादिर निधड़क बीड़ी पी रहा था। लोचन शहर की सही उर्दू में कह रहा था—"खां साहब, ऐसे में तो हम संतरे (शराब) की पूरी बोतल लेते थे।"

रामजनवा ने संशोधन किया—"लौण्डे हो न अभी बाबू; जो मजा गांव में घर पर खिची (शराब) में है, उसे तुम क्या जानो।"

बिसराम ने सहयोग दिया—"हां चौधरी, चौपार में हो, महुआ की, क्या कहने!" उसने होंठ चूसने का शब्द किया!

मुलुआ ने अपना मत प्रकट किया—"अरे भइया, नसा सुलफे का और सब हेच। नसे का राजा सुलफा।"

पढ़ा-लिखा राजनैतिक कैदी होने के कारण मुझे पढ़ने के लिये हरिकेन लालटैन की सुविधा मिली थी। साधारण कैदियों की अनाचारपूर्ण उच्छृङ्खलता के प्रति विरक्ति दिखाकर लालटेन लेकर एक ओर पट्टे पर लेट कर कम्बल का तकिया बनाये अंग्रेजी के एक चित्रमय साप्ताहिक में मन लगाने का यत्न कर रहा था। पत्र की अपेक्षा कैदियों की कामनाओं और अनुभूतियों की नग्न अभिव्यक्ति अधिक आकर्षक हो रही थी परन्तु उसमें रस लेना सम्मानित राजनैतिक व्यक्ति के लिये उचित न था। दृष्टि पत्र पर लगी थी पर कान स्वतंत्र थे।

जहां भी चार आदमी आ जुटें छोटे-बड़े का भाव बन जाता है। कैदियों को जेल की चारदिवारी में मूंदकर एक जाति के पशुओं की भांति बराबरी का व्यवहार कड़ाई से बरता जाता है। सभी का कुर्ता, जांघिया, कम्बल, फट्टा, तसला-कटोरी और हिस्ट्री-टिकट एक सा होता है। परन्तु छोटे-बड़े का भेद वहां भी फूट ही आता है। सभी कैदी, अंग्रेजी बाजा बजाने वालों के सामने स्वरों के नक्शे का कागज संभाले टिकटी की भांति, हिस्ट्री टिकट लेकर एक लाइन में खड़े होते हैं। सुपरिटेन्डेन्ट साहब उन्हें गिने हुए नगों की भांति सरकारी दृष्टि से देखता है। इस समानता में भी संस्कार और सम्पत्ति के संबंध से तुरन्त ऊंच-नीच हो जाता है, जैसे भुने चनों की झोली को झटकने से फूले-फूले ऊपर आ जाते हैं। यों भी लुटे [illegible] के सन्मुख डाकू अभिमान करता है

INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 46479
Date

और चोर के सन्मुख फौजदारी और कत्ल में सजा पाने वाला अपने चरित्र पर गर्व करता है। पढ़ा-लिखा राजनैतिक कैदी सरकार का शत्रु होने के नाते सरकार के प्रतिनिधि जेलर और बड़े साहब का प्रतिद्वन्दी बनकर कैदियों के विचार में उन्हीं के तरह सम्मान का अधिकारी हो जाता है। बड़े साहब के प्रति कैदी का सम्मान विवशता से और राजनैतिक कैदी के प्रति आदर और श्रद्धा की भावना से होता है। राजनैतिक कैदी के पास इस बड़प्पन की रक्षा का कुछ भी बाह्य साधन न रहने से केवल व्यवहार और भावना से ही उसकी रक्षा करना कुछ आसान नहीं होता। उसके लिये कितना संयम आवश्यक होता है! अपने साधारण व्यक्तित्व का कितना हनन भी आवश्यक हो जाता है?

लालटेन के प्रकाश में मेरे हाथों में फैले अखबार पर चित्र देखकर मुलुआ कौतुहल से पीछे आ बैठा था। वह पुकार उठा—"बाघ है क्या? हुजूर सचमुच बाघ ही तो है!.....जय सतनारायण भगवान की!"

मुलुआ से बात करने के लिये काफी कारण हो गया। करवट लेकर पूछा—"कभी बाघ देखा है?" मन में विचार था चिड़ियाघर या सर्कस के जंगले में बन्द बाघ देख लेना एक बात है वर्ना बाघ देखना मामूली बात नहीं है।

"हुजूर हम लोगों का क्या देखना.....ऐसे देखा काहे नहीं, खूब देखा है। ..... यह तो मरे पड़े हैं किसी बड़े सरकार ने सिकार किया होगा।" उसके मुख से निकला और विस्मय में उसके ओंठ खुले रह गये। आदर से उसने मरे हुये बाघ के चित्र को नमस्कार कर दिया।

पूछा—"क्यों, तुम भी बाघ का शिकार करने गये थे?"

मरे हुये बाघ के चित्र की ओर लगी मुलुआ की आंखें आदर और विस्मय से फैल रही थीं। मेरी बात से उसका स्वप्न टूटा। वह बोला—"अरे सरकार, आप लोगों की जूती के गुलाम हैं। सिकार आप साहब लोग, राजा लोग खेलते हैं। हम लोग सिकार क्या खेलेंगे?" आदर के भाव से वह पीछे सरक गया।

मुलुआ बुन्देलखण्ड की किसी रियासत की प्रजा था। अंग्रेजी इलाके में डाका मारने के अपराध में चौदह बरस सजा काट रहा था। वही बात स्मरण कर पूछा—"क्यों, तुम्हारी रियासत में तो घर-घर बन्दूक रहती है। शिकार नहीं खेलते तो क्या डाका ही डालते हो?"

"अरे सरकार, पेट के लिये जानवर गिरा लिया सो एक बात है। नाहर का सिकार दूसरी बात है।.....वो राजा लोगों का काम है।" स्मृति में वीर

रस के समावेश से वह तनकर बैठ गया। आंखें चमक उठीं, "सिकार सरकार राजे-रजवाड़े खेलते हैं, अपसर खेलते हैं। जैसे सुना इस जंगल में नाहर आया है, रियाया के नाम डोंडी पिटवा दी। हुक्म होने पर चार गांव की रैयत जंगल को घेर लेती है। जंगल को छान कर खेदा होता है। नाहर धर लिये जाते हैं। तब बड़े सरकार हाथी पै आनकर मचान पर बैठते हैं"···वह वीर आसन से उचक उठा। कल्पना ने उसके हाथों में बन्दूक थमा दी। निशाना साध कर वह बोला, "तब सबसे पहली गोली सरकार की दन से चलती है। कभी जंट साहब भी रहते हैं। सरकार चूक जायं तो रजवाड़े लोगों की गोली। बन्दूकची भी साथ में रहते हैं।···"

मुलुआ अत्यन्त उत्साह से हाथ और नेत्रों के संकेत से शिकार का वर्णन कर रहा था—"ऐसा होता है सरकार, सिकार!"

"तुमने काहे का शिकार किया है?" फिर भी पूछा।

"अरे सरकार यही कभी ससा, साही, हिरन, लूमड़, दांती गिरा लिया कभी।"

"दांती क्या?"

"यही जिसे सरकार बनैला सुअर बोलते हैं उसके सामने दांत रहते हैं न।"

"बनैला सुअर!···क्या बन्दूक से?"

"नहीं सरकार। बन्दूक में बहुत खर्चा आता है। तोड़ेदार हो तब भी कम से कम दो आने का गोली-गट्टा तो चाहिये। यही बल्लम, कुल्हाड़ी से। दांती पर पत्थर मारो तो गोली की तरह सीधा आता है। उसे सीधा बल्लम पर ले। ससुर अपने जोर पर बिधा चला जाता है। बल्लम इस जगह दे"—अपनी पसली ठोक कर उसने कहा—"और बल्लम की नोक धरती में गाड़ कर अपना वजन ऊपर तौल दे। नहीं तो सरकार ससुर बड़ा जालिम होता है। हुजूर, दांत की चोट से पेड़ गिरा देता है। नाहर से कम थोड़े ही होता है। बस सरकार यह समझो कि नाहर पैना खंजर और दांती भारी मुग्दर; जो पड़ जाय खतम कर दे।

"और एक रोज तो सरकार समझा कि जिन्दगी थी। बस वही रखने वाले थे।" उसने हाथ जोड़कर आकाश की ओर संकेत किया।

"क्यों, क्या हुआ?" करवट लेकर उत्सुकता से मुलुआ की आँखों में देखा।

"सरकार हुआ क्या; ऐसा हुआ कि"—अपनी भुजाओं के पुट्ठों को कठोर हाथों में दबाकर उसने कहा, "सरकार हमारे गाम से कोई आधे मील पर नदी

है। वहां रात में जानवर पानी के लिये आता है। भैया ने कही चलो, कुछ बेंघ लावें; ससा, लूमड़, सेह, दांती जो मिल जाय।

"सरकार क्वार के दिन थे। नदी किनारे सिर से हाथ भर ऊंची सर खड़ी फूल रही थी। अम्बर में चन्द्रमा खूब चटक रहे थे। पूनों होने को थी। राह में भैया दिशा बैठ गये। हम आगे-आगे चल रहे थे। बल्लम बायीं कांख में लिये थे। दायें हाथ में ऐसे ही एक संटी थी। मुंह से सीटी देते, संटी से सर पै यों ही मारते जा रहे थे।

"बस सरकार भगवान रखने वाले हैं। सामने नजर पड़ गई। नाहर दायें से बायें को रास्ता काट रहे थे कि खटके से सहम गये। कनौती खड़ी कर हमारी तरफ तके। पूंछ सपोले की तरह लहर गई। नथुने फूले, जैसे सरकार, बिलौटा मूसे को तकता है। चन्द्रमा हमारी पिछाड़ी थे सो नाहर के चेहरे पर पड़ रहे थे। उनकी आंखों में खून था। बस बल्लम संभाला। सरकार नाहर से कोई भाग थोड़े ही सकता है। नाहर बफरे और बिजली की नाईं उछले।"

मैं सांस रोके सुन रहा था। मुलुआ मेरी व्यग्रता लक्ष न कर कहता जा रहा था—

"बस भगवान रखने वाले थे कि यह जेल का अन्न जल कहाँ जाता। वे ऊपर से गिरे। हमने दब के उन्हें बलल्म पर ले लिया"—मुलुआ ने अपने कण्ठ पर हाथ मारा, "हड्डी टूटकर बल्लम पार निकल गया। एक 'गौं' सी उन्होंने की।" मुलुआ ने अपनी गर्दन के पीछे हाथ मारा, "नाली फट कर हवा निकल गई। हमने बल्लम की नोंक धरती पर दे बदन तौल दिया। बस हिले ही नहीं। सरकार इत्ते में हमारा चोटी का पसीना धरती पर चू गया।" बायें हाथ की उंगली दायें हाथ की तर्जनी की जड़ पर रख उसने कहा, "सरकार इत्ते-इत्ते बड़े नख। पीठ पर छू ही गये थे तो कई दिन लौं पकती रही।

"इत्ते में भैया आ गये तो हमें बल्लम पर बदन तौले देखकर बोले, क्या है रे? सरकार हमारा बोल न फूटा। धीरे से कहा—नाहर झपटे थे।

"भैया बहुत डरे। बोले—मुलुआ बड़ा जुल्म किया तूने! अब कैसे हो?

"हमने कहा—भैया जो कहो। जान पर आ गई थी।"

विस्मय से मैंने पूछा—"क्या मतलब?"

"अरे सरकार, नाहर के मारने का ताई रियाया को हुकुम नहीं है। सजा मिल जाती है सरकार। भैया बोले—बस देर न करो मुलुआ।

"सरकार तुरतै सर तोड़कर दो रस्सी बाटी। एक रस्सी में नाहर के हाथ बांधे दूसरी रस्सी में पांव। दूर तक जमीन में रक्त पड़ा था। उसमें चन्द्रमा लौक रहे थे। गर्दन से वल्लम खींचा। दोनों बल्लम हाथ-पांव में डाल, दोनों कन्धों पर रखे आगे भैय्या हुये और हम पीछे। सरकार इत्ती भारी लाश थी। पांच हाथ से बढ़ती रही। और बोझ सरकार इत्ता कि दब-दब के कदम-कदम सरक रहे थे। पांव तले नदी तीर की रेती।

"लाश नद्दी में ले गये। कमर-कमर तक पानी में ले जाकर, ऊपर बीसियों पत्थर रखे। तब राम-राम करते आधी रात को घर लौटे।"

मुलुआ की वीरता से जो श्रद्धा मन में हुई थी, उसकी मूर्खता से झल्लाहट में बदल गई। झल्लाकर कहा—"पागल हो! नाहर मारा था तो दुनिया को बताते, तुम्हारा नाम होता।"

दोनों कान छूकर मुलुआ फिर बोला—"अरे सरकार, बात कहीं पटवारी के कान पड़ जाती तो घर-बार बिक जाता, नहीं तो रियासत की जेल काटते-काटते जिन्दगी बरबाद हो जाती। रियाया लोग कहीं नाहर मार सकते हैं! वह तो सरकार राजा का सिकार है। वे बन के राजा, वे जग के राजा।"

मैं फिर पत्र में राजा साहब के शिकार का चित्र देखने लगा—राजा साहब मरे हुए नाहर पर पांव रखे, हाथ में बन्दूक लिये अपनी वीरता का विज्ञापन कर रहे थे।

रियाया से जंगल घिरवा कर, हाथी पर चढ़कर, मचान पर बैठकर, बारह बन्दूकची पीठ पीछे बैठाकर उन्होंने नाहर को मार गिराया था और मुलुआ नाहर से दो-दो हाथ कर केवल भाले से उसे मार कर भयभीत होकर अपना हत्या का अपराध छिपाकर सन्तुष्ट था।

जो कमबख्त कमीन गुलाम होकर जनमा, वह वीरता क्या करेगा! करेगा तो उसका दण्ड पायेगा।

महादान

सेठ परसादीलाल टल्लीमल की कोठी पर जूट का काम होता था। लड़ाई शुरू होने पर जापान और जर्मनी से खरीद बन्द हो गई। जहाजों को दुश्मन की पनडुब्बियों का भय था; अमेरिका भी माल न जा पाता।

आखिर रकम का क्या होगा ? सरकार धड़ाधड़ नोट छापे जा रही थी। ब्याज की दर रोज-रोज गिर रही थी। रुपये की कीमत गिर रही थी और चीजों की बढ़ रही थी।

सेठ परसादीलाल ने चावल का भाव चढ़ता देखकर चार कोठे खरीद लिये थे। हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से कुछ करना ही भला था। आठ रुपये मन खरीदे चावल का भाव ग्यारह रुपये जा रहा था। सेठ जी को भगवान की कृपा पर भरोसा था। जो पत्थर में बन्द कीड़े का भी पेट भरता है, वह भला सेठ जी की सुध न लेता। वे नित्य-दो घण्टे पूजा कर घर से निकलते थे। और काम रह जाय, पूजा नहीं रह सकती थी। पैंतीस हज़ार मन चावल में एक लाख साढ़े छियासठ हजार का मुनाफा था। भाव अभी चढ़ रहा था। चावल निकालना सेठ जी को मूर्खता जान पड़ती थी। वे और खरीद रहे थे।

अनाज का भाव चढ़ा तो देश भर के भूखे-नंगे कलकत्ते की ओर दौड़ पड़े। ऐसा दुर्भिक्ष कभी किसी ने सुना न था, देखे की तो कौन कहे। मनुष्य का रूप धरे जीव अस्थिपंजर अवशिष्ट कुत्तों के साथ जूठे पत्तों और सकोरों पर यों टूटते कि भगवान का नाम ! सब ओर नर-कंकाल देहों का कातर आंखें उठा कर, हाथ पसार कर मुट्ठी भर अन्न के लिये चिल्लाना सुनाई देता—"मांगो, बाबू रे···मूठी भात।" सेठ जी अपनी कोठी से आते-जाते इस सब त्राहि-त्राहि

और आतंक के वातावरण में राम-राम, हरे राम का जाप करते जाते।

जिस अन्न की एक मुट्ठी के लिये कंकाल समूह त्राहि-त्राहि कर रहा था, वह सेठ जी के कोठों में भरा हुआ और 'तेजी' की प्रतीक्षा कर रहा था। सेठ जी के कोठों में कुछ समय विश्राम कर लेने से चावल का मूल्य सवाया-ड्योढ़ा हो जाता था। कोठों में बंद चावल की, रुपये के रूप में बढ़ती यह शक्ति बाजार से दूसरे चावल को अपनी ओर खींचे ला रही थी।

क्षुधा पीड़ितों को देख कर सेठ जी का हृदय पसीज उठता। भुने चने का एक बोरा उन की कोठी के द्वार पर रख दिया जाता था। दरबान प्रत्येक मांगने वाले को एक मुट्ठी चना देता जाता था। चने का यह दान एक भयंकर संघर्ष का रूप ले लेता था। भीख बांट सकने लायक व्यवस्था बनाये रखने के लिये डांट-फटकार, लात-घूंसे और कभी डण्डे और जूते तक के उपयोग की आवश्यकता हो जाती थी।

सेठ जी के द्वार पर दान था और भीतर व्यापार। एक के बाद दूसरा दलाल आकर चावल के सौदे की बात करता था। भूखे कंगालों के प्रति बह जाने वाली सेठ जी की उदारता, व्यापार के क्षेत्र में अविचल सेनापति की दृढ़ता में बदल जाती।

लाला जी के यहां चावल सुबह से तैंतीस के भाव बिक रहा था। दोपहर में आकर उन्हें मालूम हुआ, मुनीम जी ने पांच सौ मन सुबह से बेंच डाला था। लालाजी ने माथा ठोंक लिया—"क्या सत्यानास कर डालेंगे मुनीम जी ? बन्द करो !···नहीं भाई, चावल नहीं है अपने पास !" दलालों की ओर हाथ बढ़ा उन्होंने कहा, "हम तो भाई साढ़े पैंतीस के खुद खरीददार हैं !"

दोपहर से लाला जी खरीदते गये। संध्या को साढ़े अड़तीस बिक रहा था पर लाला जी खरीद रहे थे। रात को भाव उन्तालीस पर बन्द हुआ। प्रतारणा भरी दृष्टि से मुनीम की ओर देख कर लाला जी ने धमकाया—"कहो मुनीमजी !"

सड़कों-बाजारों में बुभुक्षितों की संख्या और उन का चीत्कार बढ़ता जा रहा था। लालाजी परेशान थे। सरकार चावल पर कन्ट्रोल कर रही थी। मुनीम जी राय दे रहे थे—समय रहते जितना निकल जाय, निकाल दिया जाय।

चिढ़कर लालाजी ने कहा—"सरकार के दाम लगाये से क्या होता है ? जिस के कोठे में माल है दाम उस का लगेगा ! सरकार कहीं से लाकर सस्ता बेच लेगी ? कोई कागद का नोट है कि मन चाहा छाप लिया ? सरकार भी

लेवेगी तो व्यापारी से ही।"

कन्ट्रोल के कारण प्रकट में सौदा बन्द था। पर असल में सेठ जी पैंसठ के भाव बेच रहे थे। मुनीम जी चिंता से कहते, "पैंसठ के भाव खपेगा कितना ? अमान की फसल भी तो आवेगी।"

सेठ जी ने समझाया—"ऐसा छोटा दिल करने से कहीं व्यापार होता है मुनीम जी !···इस भाव से आधे पौने कोठे भी बिकेंगे तो भी अपनी दोहरी खरी है। आगे के राम जी मालिक हैं।"

सभी बाज़ारों से आदमियों के मक्खी-मच्छरों की तरह पटापट मरने की खबरें आतीं थी। सुन कर सेठजी का हृदय दहल जाता। और भी भयंकर खबरें आने लगीं; मुर्दाघाटों पर लाशों के ढेर लगे थे। लकड़ी रुपये की आठ सेर बिक रही थी; बल्कि मिलती ही नहीं थी। गरीब लोग लाशें छोड़ चले आते थे।

"बेचारे अन्न के दाने को तरस कर मर गये। अब उन की मिट्टी की यह दुर्दशा ! बेचारों की गति कैसे होगी।" लाला जी की आंखों में आंसू आ गये।

कोठी पर रुपये में एक पाई धर्मादय का कवता था। व्यापार व्यापार है, और धर्म धर्म। धर्मादय का रुपया कभी रोकड़ में लगा देते तो उसे ब्याज और मूल सहित फिर धर्मादय में कर देते। वह भगवद-अर्पण था। कंगालों की दुर्दशा देख कर उसी खाते में से लाला जी दो बोरी चना रोज बंटवा रहे थे। फिर भी एक लाख बयालीस हजार रुपया धर्मादय में हो रहा था। जैसे मुनाफा बढ़ा वैसे धर्मादय भी बढ़ा।

"मुनीम जी," आंखों में करुणा के आंसू भर सेठ जी ने हुकुम दिया "जो भाव लकड़ी मिले, बीस हजार की खरीद कर गिरवा दो। किसी बेचारे की मिट्टी की दुर्गति न होने पावे !"

अगले दिन सुबह ही छापे में (समाचार पत्र में) सेठ जी के चित्र सहित छप गया—"महादान ! सेठ परसादीलाल टल्लीमल का महादान !···"

गतिहीनों की अवस्था से जिन का कलेजा मुंह को आ रहा था, ऐसे लोगों ने आ कर सेठ जी की प्रशंसा कर उन्हें धन्यवाद दिया।

विनीत स्वर में अकिंचिन भाव से सेठ जी ने उत्तर दिया—"मैं किस लायक हूं। सब भगवान का ही है। उन्हीं के अर्पण है। मनुष्य है किस लायक !"

गवाही

वकील पन्नालाल सक्सेना पांच बजे के करीब कचहरी से लौटते थे। बाहर बैठक में दो-चार मुवक्किलों से बातचीत करते, चाय पीते और कपड़े बदल कर वे बाहर निकल जाते। सांझ प्रायः घर के बाहर महफ़िलबाज़ी में ही कटती। दिन भर की मेहनत के बाद तबीयत तफ़रीह के लिये मचल उठती। यह उन्हें जिन्दगी का हक़ मालूम देता। कभी सिनेमा भी चले जाते; लेकिन ज्यादा लुत्फ़ रहता अगर कहीं मिक्स्ड कम्पनी में ब्रिज या फ्लैश की बैठक जम जाय।

कभी बैठक उनके अपने मकान पर भी जमती। यार-दोस्त आ जाते। दो-चार हाथ हो जाते। बीच-बीच में हलका ड्रिंक भी चलता पर वह लुत्फ़ न आता जो चौधरी साहब या मि० खन्ना के यहां मिक्स्ड कम्पनी में आता था। जहां कुछ स्त्रियां भी हों और ही बात रहती है। खेल भी चलता है, आंखें भी बहलती हैं, कुछ चुहल होती है, एक गुदगुदी सी उठ आती है, तबीयत में करारी हो जाती है। ऐसे समय पांच-सात रुपये की हार-जीत का गम नहीं होता।

मि० सक्सेना के अपने मकान पर यह बात न हो पाती। यों उनका परिचय कई माडर्न लेडीज़ से था। उनके मित्र शर्मा भी दो-चार को उनके यहां निमंत्रित कर सकते थे। पर यह ठीक न जंचता था क्योंकि स्वयम् उनकी श्रीमती जरा पर्दा करती थीं। जो सन्तोष सक्सेना साहब को अपने घर न मिल सकता उसके लिए उन्हें बाहर जाना ही पड़ता था।

मि० सक्सेना को रात में बाहर देरी हो जाती और गौरी इन्तज़ार में बैठी कुढ़ा करती। देर न भी हो तो भी कचहरी से आये और फिर बाहर चले

गये; यह भी कोई तरीका है ? सुबह यों ही ज़रा अबेर से उठते थे। बाहर दफ्तर में मुवक्किलों से बात करते-करते समय निकल जाता था। जल्दी में खाना खाया और कचहरी चले गये।

घर में नौकर-चाकर होने पर भी देख-भाल का काम ही काफी था। घर पर की चीज-बस्त सहेजने, लल्लू के कपड़े सीने, स्वेटर, मोजे बुनने में ही सब समय निकल जाता और घर का काम पूरा न हो पाता। कभी मन बहलाने के लिए वह उपन्यास या पत्रिका पढ़ने लगती। उसमें मन रम जाता तो ऐसा जान पड़ता कि काम का हर्ज हो रहा है। इतनी व्यस्तता होने पर भी वकील साहब का घर से केवल भोजन-बिस्तर का सम्बन्ध उसे खल जाता। यह भी नहीं कि वकील साहब गौरी से प्रेम न करते हों। जेवर और कपड़े बिना कहे ही आते रहते थे। फर्माइश के लिये ही मौका न आ पाता था। इन्कार की गुंजाइश न थी।

वकील साहब गौरी के प्रति शब्दों से भी प्रेम प्रकट करते परन्तु गौरी के मन में जैसे विचार बैठ गया था कि वह केवल फुर्सत के समय प्रेम करके दिल बहला लेने की चीज है; जैसे पिंजरे में लटकी मैना। कभी मन में आ गया, पिंजरे के समीप खड़े होकर उससे कुछ बोलने-बतलाने लगे। खयाल न आया या फुरसत न हुई, न सही। वकील साहब के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं कि वे दिन भर क्या करते हैं, किन लोगों से मिलते हैं·····वह क्या जाने ? वे उसे साथ नहीं ले जाते क्योंकि उनके यहां परदा है। परदे में क्या रखा है, वह सोचती—बड़े-बड़े घरों की बहुयें सब जगह आती-जाती हैं, परदा नहीं करतीं। वह भी पति के साथ आये-जाये। पर वकील साहब को यह पसन्द न था। कभी गौरी सोचती, उन्हें यह सब बात पसन्द नहीं तो फिर वह खुद ऐसी जगह क्यों आते-जाते हैं ?

ऐसी बातों पर कुढ़ कर गौरी मुंह फुला लेती तो उसे एक-दो दिन का फाका हो जाता। जब वह मुंह खोल बैठती तो वकील साहब नाराज हो जाते, कभी डांट देते—"ऐसे ही मेम साहब बनना था तो विलायत में शादी की होती या ईसाइन बन जाती।" दोनों रूठ जाते। गौरी तीन-तीन दिन बिन खाये रह जाती। वकील साहब और अधिक बाहर रह जाते। घर आते तो और भी चुप और बेसरोकार, जैसे किसी होटल में आ टिके हों।

ऐसे झगड़ों के बाद सुलह होती तो वकील साहब गौरी को समझाते—"जब

दुनिया में रहना है तो दुनियादारी निभानी ही पड़ती है, चार आदमियों के यहां उठना-बैठना होता ही है। सब जगह सब तरह के लोगों में तुम्हें कैसे लिये फिरें ? बीस तरह के आदमी होते हैं, बीस तरह की बातें कह जाते हैं। घर की स्त्रियों की एक मर्यादा होती है। सम्मान होता है। कोई बेहूदा बात उनके सामने बक दे तो क्या किया जाय ? शरीफ आदमी का तो मरन हो गया ! भले घराने की औरतें ऐसी जगह जायें क्यों ? अपनी इज्जत अपने ही रखे रहती है। तुम घर में उकता जाती हो, तुम्हें कोई बांधे तो है नहीं। पड़ोस में इन्सपेक्टर साहब हैं, घनपुरा वाली रानी साहबा हैं। वहां चली जाया करो, उठ-बैठ आया करो। हमें अदालत पहुंचा कर मोटर यों ही थान पर खड़ी रहती है। ड्राइवर दिन भर सोया करता है। अम्मा को साथ लेकर अपने मेल-मिलाप की सहेलियों में ही हो आया करो। इतने बड़े-बड़े रईस और ताल्लुकेदार लोग हैं, अपने हिन्दुस्तानी ढंग से रहने वाले अफसर लोग हैं। इन सबके घर की स्त्रियां बाजारों में मर्दों के साथ थोड़े ही कूदती फिरती हैं। अपने सलीके से, पर्दे के साथ सब जगह आना-जाना भी होता ही है।

× × ×

लगभग चार महीने गौरी ने वकील साहब के बाहर आने-जाने के विषय में मुंह फुलाकर कोई झगड़ा न किया। दोपहर में वह प्रायः माल साहब या रानी साहिबा के यहां चली जाती। रानी साहिबा की कोठी पर परदा था परन्तु वैसे होटल, रेस्टोरां, सिनेमा या पार्टी में जाने में भी एतराज न था, बशर्ते रिश्तेदार या परिचय के लोग वहां न हों। गौरी एक रोज माल साहब की साली के साथ मैटिनी (दोपहर) शो में सिनेमा भी हो आयी परन्तु वकील साहब से कहने का साहस न हुआ। वकील साहब को सन्तोष था, गौरी को समझ आ गयी। शर्मा के साथ उनकी तफरीह का प्रोग्राम बिना अड़चन के चलने लगा। कभी अदालत की छुट्टी से पहली रात वे रात भर भी घर से गायब रह जाते तो गौरी को झुंझलाहट न होती। चिन्ता होती तो केवल यह कि हाय, खाना जाने कहां और कैसे खाया होगा ?

× × ×

अगले दिन अदालत की छुट्टी थी। शाम को वकील साहब का प्रोग्राम शर्मा के साथ एक ब्रिज पार्टी में जाने का था। कई दिन से इस पार्टी का लालच शर्मा ने उन्हें दिया था। मि० जोशी के यहां मिक्स्ड पार्टी थी। शर्मा से सुना था, काफी जिन्दादिली रहती है। मिसेज कोहली ब्रिज में अच्छे-अच्छों के कान काटती हैं। वेगम रशीद खेलती तो ऐसा-वैसा ही हैं पर मज़ाक खूब चुस्त करती हैं। और कोई एक मिसेज सक्सेना है; कुछ सहमी हुई सी रहती हैं। ज़रा उनकी आंखों में आंख गड़ा दो तो चेहरा लाल हो जाता है। उनका झेंपना कमबख्त कलेजे को पार कर जाता है। तबीयत करती है उसे देखा ही करें। तुम्हारी मिस सिंह तो उसके सामने झांख सी जान पड़ती हैं। यार, इस मिसेज सक्सेना पर कुछ खर्च करो तो हाथ आ सकती है—कसम तुम्हारी, अभी कच्ची ही जान पड़ती है। वेगम रशीद और मिस सिंह की तरह घुटी हुई नहीं है।

नयी महफिल में जाने के शौक में वकील साहब ने काली अचकन पर ब्रुश और लोहा करवा मंगाया था और चूड़ीदार पायजामे को चिकने कागज की सहायता से चढ़ा रहे थे। बाहर जाने के ढंग से बढ़िया साड़ी और जेवर पहने आकर गौरी ने पूछा—"क्या गाड़ी कहीं जाने के लिये रुकवा रखी है ?"

"हां, जरा शर्मा साहब के यहां जा रहा हूं। उनके एक दोस्त के यहां खाना है·····क्यों ?"

"अभी तो कपड़े पहन रहे हो ! न हो ड्राइवर हमें माल साहब के बंगले में छोड़ दे। उनके यहां से बुलाने आयी हुई हैं। बहुत जिद् कर रही हैं। पांच मिनिट लगेंगे। लौटते में हम उन्हीं की गाड़ी में आ जायेंगी।" सक्सेना साहब को इसमें कोई असुविधा न थी। गौरी चली गयी।

शर्मा के यहां जरा हल्की सी जमा कर वे दोनों जोशी के यहां पहुंचे। बरामदे में ही ब्रिज का शोर सुनाई दे रहा था—स्पेड्स ! टू हार्ट्स !!····· थ्री नोट्रम्पस ! डबल्स·····ताशों के पत्तों की फर्राहट और प्वाइंट्स की गिनती। भीतर छोटी-छोटी मेजों पर चार-चार, छः-छः की बैठकें सब कुछ भूल कर पत्तों में रम रही थीं। मिसेज और मिस्टर जोशी जगह-जगह घूम कर देख रहे थे, कहां मिठाई या नमकीन की तश्तरी खाली हो गई है, कहां चाय, सोडे या एकाध पेग का दरकार है।

मि० जोशी ने शर्मा की पीठ थपथपा कर उनका स्वागत किया। शर्मा

ने वकील साहब का परिचय कराया। अधिकांश लोगों का ध्यान पत्तों में गड़ा हुआ था। जिन्हें कुछ ध्यान देने की फुर्सत थी, उन्हीं से जोशी सक्सेना का परिचय कराने बढ़े—"आप माल अफसर श्रीवास्तव साहब की साली हैं। आपके हसबैंड जंगलात में सुपरिन्टेन्डेण्ट हैं, आप मि० पन्नालाल सक्सेना मशहूर वकील···।"

मि० जोशी के शब्द सक्सेना साहब को सुनाई देने बन्द हो गये। सामने की दीवार के समीप मेज पर जमी टोली के समीप खड़ी, खेल देख रही एक स्त्री की पीठ की ओर वे ध्यान से देख रहे थे। उसकी साड़ी ने उनका ध्यान आकर्षित किया था। जोशी के मुख से उनका नाम सुन स्त्री ने घूम कर देखा। ठिठक कर, घबरा कर वह एक ओर चली गयी। आश्चर्य से, लज्जा से, गुस्से से वकील साहब के सिर में चक्कर आ गया, जैसे वे गिर पड़ेंगे या जाने क्या कर बैठेंगे।

किसी तरह अपने आप को संभाल कर वकील साहब निकल आये। गाड़ी के समीप खड़े, सिगरेट सुलगाते ड्राइवर को डांट कर बोले—"घर चलो।"

मोटर की खिड़कियों की बगल से उड़ते जाते बिजली की रोशनी से चकचौंध मकान और दुकानें उन्हें दिखाई न पड़ रही थीं। उन्हें दिखाई दे रहा था मिसेज सक्सेना के सम्बन्ध में शर्मा का रस ले-ले कर कुचेष्टापूर्ण बातें करना और गौरी की दगाबाजी—"···माल साहब के यहां से आयी हैं, जरा उनके यहां जा रही हूं!" और उन्हें घर से बाहर देर हो जाने पर उसका छलनापूर्ण तिरिया चरित्र! उनके दांत होठों में गड़े जा रहे थे।

कोठी के अहाते में मोटर के पहुंच जाने पर उन्हें ख्याल आया—क्यों वे यों ही चले आये? चाहिये था वहीं उस हरामजादी की चुटिया पकड़ कर लातों से उसकी जान निकाल देते। बाहर दफ्तर की कुर्सी पर बैठे दोनों बाहें सीने पर बांध कर खूनी आंखों से वे गौरी के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

कानूनी पेशे की कुर्सी पर बैठते ही सूझा—नहीं वह गलती होती। लोगों के सामने तमाशा बन जाता और कानूनी बात ठीक न होती। ऐसी इज्जत बिगाड़ने वाली दगाबाज, बदमाश औरत को कत्ल कर देने के सिवा और क्या सजा हो सकती है! कानून की गिरफ्त को वे खूब समझते थे। औरत के कत्ल के ऐसे दो मुकद्दमे वे लड़ चुके थे।

उनका दिमाग कानून की लाइन पर चलने लगा·····औरत की बेहयाई से

इश्तआल में आकर की गयी हरकत····· इन्तहाई इश्तआल पैदा करने वाले हालात का सिलसिला वे दलील में बांधने लगे—एक शरीफ घराने की परदा-नशीन औरत·····पति को एक सहेली के यहां जाने का विश्वास दिला कर उसका बदचलन लोगों की सोहबत में जाना·····जहां औरतें बेनकाब हों, शराब पी जा रही हो ! उसकी बीवी के बारे में शर्मा जैसे मशकूक चाल-चलन के आदमी का मज़ाक·····

पति का वहां पहुंच जाना !

पहुंच जाना किस सिलसिले में ?

एक दोस्त के साथ।

उस दोस्त की गवाही·····

पति का खुद ऐसी जगह जाना !

पति के अपने चाल-चलन का सवाल अलहदा है; लेकिन उसे इश्तआल तो आ सकता है।

दिमाग़ी परेशानी के कारण वकील साहब के लिये कुर्सी पर बैठे रहना मुश्किल हो गया। पीठ पीछे हाथ की उंगलियों को एक दूसरी में उलझाये वे फर्श पर चक्कर काटने लगे। क्रोध और बेचैनी बढ़ती जा रही थी। गौरी के अभी तक न लौटने की वजह ?·····उसकी इतनी मजाल ! वे चाहते थे, एक-दम गौरी उनके सामने आ जाये और वे मुंह से बिना कुछ बोले दोनों हाथों से उसका गला घोंट दें।

विचार और कल्पना के लिये मिले समय ने मस्तिष्क को गहराई में उतार दिया। सर्वनाश की उत्तेजना के ज्वार से मुक्ति ले वे पैंतरे से गौरी को सज़ा देने की बात सोचते हुए फर्श पर आगे-पीछे चहलकदमी करने लगे।

उसी समय माल साहब की मोटर अहाते में आयी और कोठी के पिछवाड़े के दरवाज़े के सामने रुकी। गाड़ी के दरवाज़े के खुलकर बन्द होने का शब्द भी सुनाई दिया। भय से कांपती हुई गौरी आंगन से अपने कमरे की ओर जाती हुई भी सक्सेना साहब की कल्पना में दिखाई दे रही थी।

क्रोध और उत्तेजना से उसका गला घोंट देने के लिये वकील साहब की बाहें फड़क उठीं·····

किन हालात में ? गवाही क्या होगी ?·····

कानूनी दलील और गवाही की अदृश्य जंजीरों ने उन्हें हिलने न दिया ……कल्पना में ही वे गौरी का गला घोंटने का सन्तोष पा रहे थे। और सोच रहे थे—फाहशा औरत का पति कहलाने से यों ग़म खाना ही क्या बेहतर नहीं ?

वफादारी की सनद

पण्डित बन्सीधर शहर जाने की पोशाक में, पायजामा अचकन और किश्ती-नुमा कढ़ी हुई टोपी पहने, मुंह अंधेरे से बिल्हरा स्टेशन पर टहलते हुये गोरखपुर जाने वाली गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। पन्द्रह-बीस दूसरे देहाती भी मोटे-मैले कपड़ों में, कंधे पर चदरा, झोली और हाथ में लाठी लिये शहर की गाड़ी की प्रतीक्षा में स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर बैठे बात कर रहे थे। एक बहू चटकीली धोती पहने, दायें हाथ से थमे घूंघट में दो उंगलियों से आँख भर के लिये जगह बनाये, भीड़ की ओर पीठ किये चाव से नये दृश्य देख रही थी। दूसरी मैले आंचल में अपने मैले बेटे को नजर से ओट किये बच्चे को बासी रोटी का टुकड़ा खिला रही थी। कोई नए ढंग का जवान बीड़ी पी रहा था और कहीं दो-चार पुराने ढंग के आदमी मिल कर लत्ता या बान सुलगा कर चिलम से दम खींच कर प्रतीक्षा के शैथिल्य का बोझ हलका कर रहे थे। बात-चीत प्रायः कचहरी सम्बंधी थी। गाड़ी नौ बजे गोरखपुर पहुंचती थी। प्रायः कचहरी में तारीख पर पहुंचने वाले लोगों की ही भीड़ होती थी।

गांव भर में एक पण्डित बन्सीधर ही एण्ट्रेंस तक पढ़े, सफेदपोश भले आदमी थे। इतना पढ़ लिख कर भी उन्होंने सरकारी नौकरी नहीं की। अपना पुश्तैनी चला आया काम ही संभाला। आस-पास कई पुरवों में बंटी घर की सत्तर-अस्सी बीघे ज़मीन थी, एक बज़ाजे की दुकान, लेन-देन का जमा हुआ कारोबार; अनाज के कोठे भी भर लेते थे। सरकारी नौकरी में मुसाहबियत चाहे जितनी हो परन्तु भीतर से खोखला ही रहता है। लावना के थाने के दारोगा साहब, यों बारह कोस तक उन्हें सलामी मिलती रहे, आए दिन पण्डितजी के यहाँ रुक्का

भेज कर रकम उधार मंगाते रहते थे। पण्डित उन के सामने चाहे सलाम में दोहरे हो जायं पर दारोगा साहब की क्या बिसात थी कि उन की बात टाल दें।

पण्डित जी भी कचहरी की ही बात सोच रहे थे। मुरकई और गफूरा दोनों के मामले में फैसले की तारीख थी। राधे पर बेदखली की दरखास्त देने को थी। सोच रहे थे, इतना तो वकील का मेहनताना लग गया। दस-एक रुपये फैसले की नकल के नाजिर जरूर लेंगे, डेढ़-एक सौ ऊपर से लग गया। ससुर जमीन की तीन बरस की कमाई निकल गई। लगान जेब से भरेंगे। अरे, बाद में फायदा ही फायदा है···एक दफे खर्च हुआ तो क्या। इस गोंइड के पांच बीघे खेत बुरे नहीं। उन्हें शहर के बाजार में भी कुछ काम था।···शाम को चार बजे की गाड़ी पकड़ लें तभी ठीक है। नहीं तो शहर में खर्च ही खर्च है, आराम ससुर कुछ नहीं। लेकिन गाड़ी ससुरी को क्या हो गया ?·····पौ फटते आ जाती थी।

प्लेटफार्म पर बैठे दूसरे लोग गाड़ी का आना-जाना भाग्य की बात मान-कर बतियाते, चिलम का दम लगाते, पसीने से गंधाते मोटे-मैले कपड़ों के नीचे बदन पर फूली हुई घाम खुजाते, जमहाई लेते प्रतीक्षा कर रहे थे। परन्तु पढ़े लिखे पण्डित जी के लिए रेलगाड़ी का आना-जाना आंधी-पानी की भांति अगम रहस्य न था। वह जानते थे, रेल को आदमी ही चलाते हैं। उस के आने-जाने, लेट होने का समाचार और कारण स्टेशन मास्टर साहब से मालूम हो सकता है।

प्रतीक्षा से उकता कर दो बार पण्डित जी ने कागज लिखते स्टेशन मास्टर से मुस्कराकर आदाबअर्ज कर पूछा—"गाड़ी क्या लेट है ?···कितनी-लेट है ?"

स्टेशन मास्टर साहब ने समीप मेज पर रखे टेलीफोन (इंटरलाकिंग टेली-फोन) को गाली देकर उत्तर दिया—"यह···कुछ बोल ही नहीं रहा, तार भी नहीं चल रहा है। जाने मखुआ स्टेशन पर सब मर गये !"

पूर्व में सूर्य अमराइयों से बांस भर ऊपर चढ़ गया। धूप फैल गई थी। चारों ओर कमर तक उठे ऊख के खेतों पर पड़ी हल्की ओस से शीतल हो रही प्रातः वायु ओस उड़ जाने से गरम होने लगी। समय को केवल सुबह, दोपहर और सांझ में बांट सकने वाले देहाती भी, प्लेटफार्म पर ठाली बैठे-बैठे समय की बरबादी अनुभव करने लगे। वे बैठे से खड़े होकर और खड़े से बैठ कर व्याकुलता प्रकट करने लगे। पण्डित जी बार-बार आंखों के आगे हाथ से छाया कर आकाश में बांह फैलाये सिगनल की ओर देखते। वह यों निष्प्राण,

निश्चल खड़ा था जैसे कभी सदियों से हिला ही न हो। पण्डित जी के माथे पर हल्का पसीना आने लगा, कुछ धूप से, कुछ अचकन की गरमी से और उस से अधिक तारीख पर कचहरी न पहुंच सकने की चिन्ता से।

सभी लोगों की आंखें पूर्व में मखुआ से आती लाईन की ओर चली गयीं। इंजन का धुआं नहीं, कुछ हल्की सी धूल हरे पेड़ों के ऊपर, सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश से सफेद जान पड़ते नीले आकाश में दिखाई दी। कानों ने कुछ अस्पष्ट सा शब्द भी सुना—रेल की सीटी और गड़गड़ाहट नहीं, मनुष्य के कण्ठ की चीख-पुकार सी।

और फिर कुछ ही क्षण में दिखायी दिया—झण्डे लिये बहुत से लोग बाहें उठाये चिल्लाते, नारे लगाते चले आ रहे हैं। बावली भीड़ के समीप पहुंचने पर सुनाई दिया—वन्दे ऽ ऽ ऽ मातरम्! हिन्दू-मुसलमान की ऽ ऽ ऽ जय! .....भारत माता की ऽ ऽ ऽ जय! .....गांधी बाबा की ऽ ऽ ऽ जय! हमारे लीडर जेल से छोड़ो.....! अंग्रेज सरकार का ऽ ऽ ऽ नाश हो! .....”

× × ×

बिल्हरा स्टेशन पर गाड़ी की प्रतीक्षा करते लोगों की व्याकुलता कौतूहल में परिवर्तित हो गयी। भीड़ में किसी को सम्बोधन कर कोई कुछ नहीं कहता परन्तु सभी लोग सब कुछ समझ जाते हैं। सुनने की भी आवश्यकता नहीं होती। लोग स्वयं ही समझ लेते हैं। भीड़ निरन्तर नारे और जय-जयकार की पुकार लगा रही थी। सांवले चेहरे धूप से लाल होकर पसीने से चमक रहे थे। भर्राये हुये गले से लोग पुकार रहे थे—“देस में देसी लोगों का राज हो गया!”

पीढ़ियों से दबी निर्बल की घृणा और प्रतिहिंसा ऐसे उछल पड़ी, जैसे कोई फ़ौलादी स्प्रिंग कब्जे से निकल कर उछल जाय। पीढ़ियों तक भूख न मिटने और आवश्यकताएं पूर्ण न होने से आत्मविश्वास और गौरव खो चुके, ऊसर में उगे पौधों जैसे बेपनपे, गठियाए से लोग, ग़रूर और सरूर में हाथ-पांव फेंकने लगे। जैसे चींटियों का दल सदा उन्हें खाती रहने वाली गिरगिट का सिसकता शव पाकर उस पर टूट पड़े, उस पर चढ़ बैठे वैसे ही सदा से त्रस्त, दलित रहने वाली, मनुष्यत्व खो चुकी प्रजा अपने विश्वास में सिसकते हुए अंग्रेजी साम्राज्य के शव पर कूदने लगी।

उस साम्राज्य का अंग-भंग करके उसे समाप्त कर देने के लिए जो कुछ भी सरकार की शक्ति के चिन्ह रूप दिखाई दिया, उसे उखाड़ फेंकने, तोड़ डालने और भस्म कर देने के लिये भीड़ आतुर हो गयी।

पण्डित बन्सीधर, मुरकई, गफूरा सब लोग कचहरी भूल गये। उन पर हुकुम चलाकर फैसला देने वाले का अस्तित्व न रहा। हिन्दुस्तानियत में गर्व से सीना फुलाये, अपनी और अपने देश की जय पुकारते, शत्रु का नाश पुकारते स्टेशन के प्लेटफार्म पर इकट्ठा हुए लोग कुछ से कुछ हो गये। देखते-देखते स्टेशन के सामने की लोहे की पटरी, जिससे अंग्रेज सरकार ने देश की धरती को बांध रखा था, धरती से उखड़ कर टेढ़े बांस की कमची की तरह हवा में झूलने लगी, पटरी के सलीपर बिखर गये।

पण्डित जी अपनी स्थिति और सम्मान के विचार से आगे हो गये। लोग स्टेशन की कोठरियों पर झुक पड़े। सब कुछ टूट-फूट गया। बड़े बाबू पहले आशंकित और त्रस्त हुये और फिर भीड़ के साथ जय-जय पुकारने लगे। स्टेशन के गोदाम में कुछ माल के साथ मिट्टी के तेल के कनस्तर थे। भीड़ उधर बढ़ी। मुरकई ने एक कनस्तर उठाकर पक्के फर्श पर पटक दिया। बहता कनस्तर उठाकर आग लगाने के लिये तेल छिड़का जाने लगा।

पण्डित जी ने समझाया—"हरे राम. नुकसान काहे करते हो भइया!"

बीसियों कण्ठों से उत्तर मिला—"अरे, सारी सरकार का माल है। इसे फूंक ही देना चाहिये।"

कुछ ही मिनिट में छोटा सा स्टेशन लाल-पीली धुमैली ज्वालाओं का स्तूप सा बन गया। आस-पास के गांवों से जयकारें लगाते गिरोह आ-आकर भीड़ में मिलने लगे। बढ़ती हुई भीड़ मन्थर गति से परन्तु अपने बल के विश्वास से आगे बढ़ी। रेल की पटरी और सड़क के बीच, बरसों से अडिग खड़े लोहे के मोटे खम्भे, जिन्हें यदि पशु भी सींग या पीठ से छू देते तो किसान सरकारी क्रोध की आशंका से कांप उठते थे, विशाल भीड़ के सामने कच्ची ऊंख की भांति कुड़मुड़ा कर गिरने लगे। वे खम्भे भीड़ के क्रोध का शिकार केवल इसलिये बने कि वे सरकारी सम्पत्ति थे। उनके गिर जाने से, रेल की पटरी उखड़ जाने से सरकार के असमर्थ हो जाने के रहस्य में और जनता की असुविधाओं का विचार होगा तो केवल शहर से आने वाले दो-एक चतुर व्यक्तियों को या बंशीधर को।

उमड़ती हुई भीड़ लावना के थाने की ओर चली। विशाल ब्रिटिश साम्राज्य, जिसके विस्तार की सीमा सूर्य भगवान भी लांघ नहीं पाते थे, की शक्ति का प्रतिनिधि बारह कोस में वही थाना था। ग्यारह सिपाही और एक दारोग़ा जी। चालीस हज़ार से अधिक प्रजा उन्हें अंग्रेज़ सम्राट का प्रतिनिधि मान कर सिर झुकाती चली आ रही थी। जय-जयकार करती, झण्डा फहराती भीड़ थाने की ओर बढ़ती चली। अपनी स्थिति के अधिकार से पण्डित जी भीड़ के मध्य में, जनगण के मध्य में मनोनीत नेता बने चले जा रहे थे।

दारोग़ा साहब ने भीड़ को धमकी दी कि गोली चला देंगे। विजय के उत्साह में बावली जनता ने कुरतों के बटन तोड़, सीना खोल दिया—"चलाओ गोली!"

बन्दूक की धमकी से बावली भीड़ ईंट-पत्थर उठाकर सामना करने के लिये तैयार हो गई। पण्डित जी ने समझाकर भीड़ को शान्त किया।

दूरदर्शी दारोग़ा साहब ने हंस कर कहा—"अरे, हम तो आप ही लोगों के नौकर हैं। रैयत ही हमारी सरकार है। उसी का दिया खाते हैं। अंग्रेज़ कौन विलायत से रक़म ढाकर लाते हैं, साले···! और इस देश से भरे ले जा रहे हैं उल्टे!·····"

भीड़ ने दारोग़ा और सिपाहियों को गांधी टोपी पहना दी और जोर से वंदेमातरम् का नारा लगा कर हिन्दू-मुसलमान की जय पुकारी। पण्डित जी ने अपने हाथों से थाने की इमारत पर लगे झण्डे पर कौमी झण्डा बांधा और देश की आज़ादी के लिये प्राण दे देने की प्रतिज्ञा की।

× × ×

तीन दिन तक बिल्हरा, मखुआ, लावना और बिरूर में रामराज्य का आनन्दोत्साह रहा। रैयत कचहरी के अपने झगड़े भूल गई, जैसे सब की सब शिकायतें मिट गई हों। लगान की दुश्चिन्ता भुलाकर किसानों ने तेल में छौंकी अरहर की दाल में खटाई मिलाकर कचर-कचर भात खाया। बासी रोटी गुड़ से खायी। पण्डित जी बिना किसी चुनाव के, बिना किसी नियुक्ति के इलाके के पंच कहिये, चौधरी कहिये, तहसीलदार, डिप्टी जो कहिये, बन गये। सब ओर से उन्हें जैराम जी और रामजुहार होने लगी। लोग उनका आदर पहले

भी करते थे परन्तु तब पैसे और दारोगा साहब से दोस्ती का दबदबा था। अब जैसे वे रैयत के अपने हों। आंखें बदल गयीं। एक उत्साह और उमंग सब ओर थी।

चौथे दिन सुबह ही मखेरा और पतोली से तीन आदमी परेशानी की हालत में शरण ढूंढ़ते बिल्हरा पहुंचे। एक की बांह में बन्दूक की गोली का घाव था। उन्होंने बताया—"जिले से बड़ी भारी फौज और पुलिस तोप-बन्दूक लिये बग़ावत को दबाती चली आ रही है। गांधी जी की जय पुकारने, गांधी टोपी लगाने और कांग्रेस का झण्डा उठाने वाले सब लोग गिरफ्तार हो रहे हैं।..... भारी-भारी जुर्माने हो रहे हैं। जहां बागियों का पता नहीं चलता, सरकार गांव में आग दे देती है। सिपाही बहू-बेटियों को बेइज्जत कर रहे हैं। बड़े-बड़े किसानों की जमीन-जायदाद जब्त हो गई। बहुत जगह रियाया और फौज में लड़ाई हुई; फौज ने गोली चलायी है।"

बिल्हरा में आतंक छा गया। गफूरे और कानसिंह के चेहरे पर भी झाईं फिर गई परन्तु उन्होंने सबके सामने खम ठोंक कर कहा—"ससुर चाहे सिर उतर जाय, दुश्मन के आगे सिर नहीं झुकायेंगे। जो अपने बाप की औलाद होगा, मर जायगा पर पीठ नहीं दिखायेगा।" वे अपने घर जाकर बल्लम और गड़ांसा पैनाने लगे।

पण्डित जी ने भी सुना और हामी भरी परन्तु मन में सोचते रहे सरकार से भिड़ना क्या खेल है ?.....मगर से बैर कर पानी में रहना ! ससुरे नंगों का क्या है ?.....उनकी कौन इज्जत है, उन्हें किसका डर है ? भले आदमी को डर ही डर है.....।

चौथे दिन का पहर था। बिल्हरा के पास से गुजरती गोरखपुर की बजरीली सड़क पर लारियां ही लारियां चली आईं। यह लारियां दूसरी रंगबिरंगी नित्य दिखाई देने वाली लारियों से भिन्न भूरी-भूरी, खाकी-खाकी रंग की थीं।

सड़क के किनारे चोर और दरोगा का खेल खेलते बच्चों ने गांव में जा कर भय से फैली आंखों से खबर दी—"सरकार आई है।"

गांव से बाहर आकर आशंकित प्रजा ने देखा—खाकी मोटरें गोंईड़ की धरती में फसल को रौंदती चली आ रही हैं। ऐसी मोटरें लोगों ने कभी देखी न थीं। लोहे की चादर से मढ़ी और उस में मगरमच्छ की थूथनी सी बन्दूकें बाहर निकली हुई। रैयत का दिल बैठ गया। बहुएं घर में जा छिपीं और बच्चे

उन की गोद में छिप गये ।

खाकी वरदी पहने, भारी बूटों से धरती को कंपाते सिपाही कंधों पर बन्दूकें लिये गांव में घुस आये । पीछे एक साहब लम्बा-लम्बा, पतला-पतला, टोप के नीचे भी धूप की चकाचौंध से अधमुंदी आंखों से एक नजर में सब कुछ देखता, दांतों में दबी चुरूट से हल्का-हल्का धुआं छोड़ता आ रहा था । लावना के दारोगा साहब आगे झुक-झुक कर बताते चले आ रहे थे । साहब के लाल-सफेद चेहरे पर एक अजीब सी तिरस्कार पूर्ण मुस्कराहट थी, जैसी गड़रिये के कुत्ते के मुख पर होती है जब सैकड़ों भेड़ों का झुण्ड उसकी एक भौं-भौं से त्रस्त होकर सिमिट जाता है ।

गांव पल्टन से घिर गया । गांव के उत्साही नौजवान गफूरा, मतई, कानसिंह जिन्होंने अंग्रेजी राज मिटाने और सुराज स्थापित करने में प्रमुख भाग लिया था, सरक गये । कर्नैल साहब की कुर्सी गांव के बीच में पीपल के नीचे लग गई । तहसीलदार साहब अदब से सामने खड़े थे । दारोगा साहब थाने के सिपाहियों, चौकीदारों और पल्टनिया सिपाहियों को लिये बदमाशों को गिरफ्तार कर रहे थे । मतई, गफूरा और कानसिंह का कहीं पता न चला ।

दारोगा साहब अपना दल लिये पण्डित जी की चौपाल पर पहुंचे । पण्डित जी ने शरीर की कम्पन वश में कर निगाहों में मुलाहिजा भरे दारोगा साहब की ओर देखा । दारोगा साहब नितान्त कर्तव्य-निष्ठ थे; जैसे वे पण्डित जी को पहचानते ही नहीं । पण्डित जी को भी हिरासत में ले लिया गया ।

कर्नैल साहब के सामने पहुंचते ही पण्डित जी ने झुक कर सलाम किया । बचपन की पढ़ाई काम आई । अंग्रेजी में बोले—"हुजूर हम शरीफ आदमी हैं, सरकार को टैक्स देते हैं । हुजूर बदमाशों ने जबरदस्ती हमारे घर पर बागियों का झण्डा लगा दिया । हुजूर, हमें मुआफी मिले । हम बदमाशों का पता दे सकते हैं ।"

साहब के चेहरे पर कोई परिवर्तन न आया । मुख से चुरूट हटाये बिना उन्होंने हुकुम दिया—"बोलो ।"

पण्डित जी सिपाहियों को साथ ले अपने अनाज के कोठे में गये और वहां गफूरे, मतई और कानसिंह छिपे हुए मिले ।

साहब के लिये गांव से बाहर खेमा लग गया था । गांव की दुर्गंध से उकता कर और अपनी उपस्थिति अनावश्यक जान, वे उठ कर चले गये । उन के चले

जाने के पश्चात दारोगा साहब शान्ति स्थापना की उचित व्यवस्था करने लगे।

पण्डित जी के सरकारी गवाह बन कर छूट जाने के उदाहरण से सभी लोग गवाही देने लगे परन्तु दारोगा साहब ने पण्डित जी के छोटे भाई रामधर और बड़े पुत्र गिरधारी को गिरफ्तार कर लिया। उन्होंने सिपाहियों को आज्ञा दी कि खास बदमाशों के अलावा शेष सब रैयत को दस-दस जूते लगा कर छोड़ दिया जाय।

रैयत को जूते लगाने से सिपाहियों का मनोविनोद अवश्य हुआ परन्तु इससे उन की क्षुधा निवृति न हुई। उन के भोजन की व्यवस्था के लिये दारोगा साहब ने हुक्म दिया—"दो बोरी आटा, दूसरी रसद और एक कनस्तर घी पण्डित बंसीधर के यहां से ले लिया जाय।"

पण्डित जी के एतराज करने पर सूबेदार ने एक सिपाही को दो जूते पण्डित जी के सिर पर लगाने का हुक्म दिया।

जूते खाकर पण्डित जी घर लौटने के लिये पीपल के तले से हट आये, परन्तु पहुंचे सीधे कर्नैल साहब के खेमे में।

अर्दली के हाथ में पांच रुपए का नोट देकर उन्होंने साहब को सलाम बोला।

मुंह में चुरूट दबाये साहब ने पूछा—"वेल !"

पण्डित जी ने अपनी शिकायत सुनाई—

"हुजूर, वफ़ादार रियाया के साथ ऐसा जुल्म हो रहा है।"

"हूं" साहब ने उत्तर दिया और अर्दली को हुक्म दिया, "दारोग़ा को बोलो, इस आदमी के घर कोई तकलीफ़ नई होगा।"

और फिर सज्जनता के नाते पण्डित जी को अंग्रेज़ी में आश्वासन दिया—"सरकार का रोब (Prestige) कायम करने के लिए ऐसा भी करना पड़ता है। कोई बात नहीं है।...बग़ावत के परिणाम में बहुत कुछ होता है।"

अनुनय के स्वर में पण्डित जी ने दरखास्त की, "हुजूर, हम शरीफ़ खान्दानी (Respectable) हैं। हमारे खानदान ने सदा सरकार की खिदमत की है। हमें हुंजूर के हाथ से शराफ़त और वफ़ादारी की सनद मिल जाय। हम से बदमाशों के जुर्म का हरजाना न लिया जाय।"

साहब पण्डित जी के चेहरे पर निगाह लगाये चुप रहे। उनकी आंखों और होठों पर अब भी वही मुस्कराहट थी। मेज़ से फाउन्टेनपेन उठा उसे

खोलते हुए उन्होंने कहा—"हम लिखेगा तुम हिन्दुस्तानी शरीफ, वफादार है ।"

साहब ने खड़े-खड़े पुर्जे पर दो पंक्तियां लिखकर मुस्कराते हुए कागज पण्डित जी की ओर बढ़ाते हुए कहा—"अगर तुम हमारा मुल्क का आदमी होता, हम तुमको दग़ाबाज़ (traitor) कहता और गोली मार देता ।"

वान हिण्डनबर्ग

सुनामा गरमी की छुट्टियां बाहर बिता आई थी। तीन सप्ताह इलाहाबाद मायके में और एक मास आगरा ससुराल में। दो ही मास के पश्चात् फिर दुर्गापूजा की दो सप्ताह की छुट्टी आ गयी। यों स्कूल से छुट्टी का विचार भला ही लगा। छुट्टी जितनी भी हो अच्छी है परन्तु फिर से इतनी जल्दी न ससुराल और न मायके ही जाने के विचार से उत्साह हुआ। दोनों ही स्थानों के अनुभव अभी मस्तिष्क में बहुत ताजे थे। उन अनुभवों की स्मृति से उसका सिर उधेड़बुन में झुक जाता। उज्ज्वल तांबे की झलक लिये गेहुंए रंग पर चिन्ता की छाया आ जाती और पतले ओंठ भीतर की ओर खिंच जाते।

सुनामा ने सोचा, दो सप्ताह एकान्त और शान्ति में बितायेगी। स्कूल के दिनों में समय न मिलने से अनेक काम शेष थे। स्कूल के समय, व्यस्तता से मधुमक्खियों के छत्ते की भांति गूंजता रहने वाला लड़कियों के स्कूल का बड़ा बंगला और उसका अहाता छुट्टी के समय एकान्त और शान्त हो जाता है, जैसे मेला समाप्त हो जाने पर मेले का स्थान नीरव और निर्जन हो जाता है। छुट्टी की घण्टी बजने पर जब दसों श्रेणियों की लड़कियां और बच्चे एक साथ सब कमरों से निकल पड़ते, उनके पांव से उड़ी धूल आदमी के कद तक उठ आती और फिर निर्जनता और शान्ति। सुनामा अपने कमरे की ओर लौटती, वैसे ही अनुभव करती जैसे मंजिल पर पहुंच कन्धे से बोझ उतार कर मजदूर करता है। छुट्टियों के पौने दो मास में बच्चों के पांव से त्राण पा और चौमासे की वर्षा से पनप कर अहाते के लान मखमली हरियाली से पूरे हुए थे। विशाल अहाते के एक ओर बने क्वाटरों में दो चपरासियों, एक माली और एक महरे

के अतिरिक्त कोई न था।

स्कूल के बंगले में ही पिछवाड़े की ओर उसका कमरा था। आरम्भ में कमरे को सुनामा ने अपने विशेष ढंग और रुचि से सजाया था। अब कमरे के आयोजन की नवीनता समाप्त हो चुकी थी परन्तु उसका अपना व्यक्तित्व उसमें समा गया था। अभ्यास से वह उसके लिये उसी प्रकार सुविधाजनक बन चुका था जैसे किसी वस्तु के लिये बनाई गयी डिबिया में उसका स्थान हो।

बी० टी० परीक्षा पास कर चौदह मास पूर्व सुनामा ने हिन्दू गर्ल्स स्कूल में मुख्याध्यापिका का काम करना स्वीकार किया था। उस समय भारत की उत्तर-पूर्वी सीमा पर जापानी आक्रमण के कारण पश्चिम ओर भाग आये लोगों के कारण युक्त प्रान्त के नगरों में खाली पड़े गोदाम और अस्तबल भी मकान करार दिये जाकर किराये पर उठ चुके थे। स्कूल कमेटी को सुनामा की आवश्यकता थी। कमेटी ने उसे आश्वासन दिया—यदि मकान का प्रबन्ध करने में आपको कठिनाई होगी तो फिलहाल स्कूल की इमारत में ही निर्वाह योग्य स्थान का प्रबन्ध आपके लिये कर दिया जायगा। सुविधा होने पर आप अपने लिये अलग मकान का प्रबन्ध कर सकेंगी।

स्कूल की इमारत में निर्वाह योग्य कोठरी पाकर गुज़ारा करने का विचार सुनामा के लिये उत्साहजनक न था परन्तु वह ससुराल से जान बचाने के लिये कहीं भी शरण पा सकने के लिये व्याकुल थी। वैधव्य के पश्चात् किसी तरह तीन बरस आगरे में बिता ससुराल से छुटकारा पाने के लिये ही उसने ट्रेनिंग कालेज में भरती हो इलाहाबाद मायके में रहने की आयोजना की थी। दो वर्ष तक मायके में रहते समय जाने कितनी बार उसके व्याकुल प्राण अवरुद्ध निश्वासों में आर्तनाद कर उठे—एक बार मायके के लिये बेगानी हो जाने पर स्त्री के लिये फिर मायका अपना नहीं हो सकता, जैसे वृक्ष से एक बार टूट गया फल फिर से उसमें नहीं लग सकता। ससुराल में अब उसके लिये क्या शेष था? ससुराल से उसके अधिकार और प्रयोजन का सम्बन्ध टूट चुका था, जैसे बेल से फल को मिलाये रहने वाली टहनी टूट जाने पर फल खेत में पड़ा रहने से केवल सड़ता है, बढ़ता नहीं।

वैधव्य के आघात से तीन वर्ष तक मानसिक मृत्यु की अवस्था में रह और मृत्यु की कामना कर भी जब वह मर न सकी तो यथार्थ की उपेक्षा से परास्त हो उसने जीवित रहने की ओर ध्यान दिया। बी० टी० की पढ़ाई इसी निश्चय

का फल थी। पढ़ाई समाप्त कर उसी पुराने संसार में, पुराने शरीर से ही उसने नयी भावना ले प्रवेश किया।

सुनामा का संसार पारस्परिक विरोध में भरा था। जैसे बिजली का मोटर स्थिर रहकर भी अत्यन्त गतिशील होता है! 'हां' के रूप में प्रवृत्ति और 'न' रूप में संस्कार बिजली के घन (पाजिटिव) और ऋण (नेगेटिव) तारों की भांति उसके मस्तिष्क में विचारों के पहिये को अत्यन्त तीव्र गति से घुमाते रहते। जैसे बिजली का मोटर स्वयं स्थिर रहकर भी अपने प्रभाव से दूसरी वस्तुओं को गतिमान कर देता है, वैसे ही सुनामा का प्रभाव उसके चारों ओर होता। इच्छा न होने पर भी, उसके आशंकित रहने पर भी आदर और प्रशंसा का एक वातावरण उसके चारों ओर कुहासे के रूप में उठ खड़ा होता और फिर अपवाद के ओस की बूंदों के रूप में जमकर अवसाद और त्रास उत्पन्न करने लगता। यह विरोध उसके रूप और वास्तविक स्थिति में भी था। अव्यय यौवन की स्फूर्ति सौम्यता से नियन्त्रित होकर भी अंगों पर लहराती थी। उसकी सादगी सुरुचि से परिष्कृत हो शृंगार से अधिक चुटीली बन जाती। सीधी मांग के नीचे बेंदी से रिक्त माथा भी और विशाल हो उठता। उसके सौजन्य से आग्रह का भाव झलकता, उसकी आशंका और सतर्कता से संकोच। उस चारु रूप और सौजन्यता के आवरण के भीतर वैधव्य का दारुण अभिशाप ढका था।

उसके व्यक्तित्व के आकर्षण के फैलाव और आत्मरक्षा के संकोच में द्वन्द से ही सुनामा का जीवन-चक्र गतिशील था। वह गति अन्तर्मुखी थी। इसलिये उसका अपना व्यक्तित्व ही उस गति का केन्द्र था। हिन्दू गर्ल्स स्कूल की मुख्याध्यापिका की नौकरी में उसने अपने स्वतन्त्र जीवन चक्र के लिये धुरी पायी।

दुर्गापूजा की छुट्टियों का आरम्भ, विश्राम और शान्ति की भावना से हुआ। क्वार बीत रहा था, पिछड़ी हुई वर्षा अपने अरमान पूरे कर रही थी। सुरमई घटाओं से अंधेरा छा जाता। पहर-पहर की झड़ी लग जाती। स्कूल के कमरों में अंधेरा हो जाने से सुनामा को झुंझलाहट होती, शीत-सा अनुभव होने लगता। चौमासे की धूप और उमस के स्थान में वह शीत सुनामा को भला लगता परन्तु स्कूल के चपरासी कन्हाई और माली बुढ़ौ चिन्ता से आकाश की ओर मुख उठाकर कहते—"जाने क्या बसी है उसके मन में?···

…खेती सब सत्यानाश हो गयी !" अपरिसीम, रहस्यमय शक्ति के प्रति क्षुद्र मानव का यह आत्मसमर्पण सुनामा के मन में सहानुभूति की चुटकी-सी ले जाता। उसका अपना जीवन भी उसी शक्ति का खिलवाड़ होकर रह गया था।

लट्ठबन्द चौकसी करते चपरासियों और माली की रक्षा में सुनामा ने रात बरामदे में बिताई। कुछ विलम्ब से उठ, अन्तिम तारों की विदाई के समय मसहरी छोड़ वह रात की ठण्डक से शीतल भूमि पर उतर आयी। सुलक्षण गृहस्थ के नियम से मेहतरानी वूलो स्कूल का अहाता तारों की छांव में ही बुहार रही थी। जमीन छूकर वूलो ने उसे सलाम और आसीस दी। सुनामा को मास्टरनी जान कर भी वह उसे 'रानी साहिबा' कहकर सम्बोधन करती थी। यह उसके व्यक्तिगत आदर-अनुराग की अभिव्यक्ति थी। ओस से बैठी धूल पर झाड़ू से लहरें बनाती वूलो पीछे की ओर हटती जा रही थी।

शीतल वायु से सुनामा ने स्फूर्ति पाई, पक्षियों की प्रथम चहचहाहट सुन उसकी दृष्टि आकाश की ओर गयी। आकाश निर्मल था। साड़ियां धोयी जा सकेंगी ! और कितनी ही ऐसी बातें सहसा उसके मस्तिष्क में फिर गयीं।

सिर धो भीगे केश पीठ पर फैलाये जब सुनामा गुसलखाने से निकली, आकाश में मेघ घिर आये थे। एक निराशा सी अनुभव की। नौकर चाय नाश्ता ला रहा है, इस प्रतीक्षा में वह बरामदे में कुर्सी पर बैठ गई। यूरोप के युद्ध के कारण बेबी वूल (बच्चों के लिये ऊन) विशेष कठिनाई से प्राप्त की हुई थी। बहन के नये बच्चे के लिए उस ऊन का अधबुना स्वेटर सिलाइयों पर उंगलियों में था।

सामने से बूढ़ा माली टटके ताजे फूलों के दो गुलदस्ते दोनों हाथों में लिये आता दिखाई दिया। माली को देख एक हल्की मुस्कान सुनामा के मुख पर आ जाती थी। चोटी से एड़ी तक उसकी हर बात में विशेषता थी। बुढ़ापे की ढिलाई के बावजूद ऊंचा और चौड़ा कद, खूब खुला सीना, रूखे बड़े-बड़े हाथ-पांव। दायें घुटने में कुछ लंगड़ाहट होने से वह धड़ को पीछे फेंक कर चलता। चिकनी चांद के ऊसर पर कहीं-कहीं सूखे कांस की फुनगियों की तरह श्वेत केश थे। सिर वैज्ञानिकों और दार्शनिकों की भांति बड़ा। माथे पर गहन उत्तरदायित्व के बोझ से सदा ही त्योरियां बनी रहतीं। चेहरा जंग लगे लोहे की भांति गेरुआ झलक लिये काला। चौड़े चेहरे पर लम्बी नाक के नीचे बिलकुल श्वेत तराशी हुई लम्बी मूंछे, छतरी की गोलाइयों जैसी ठोड़ी की ओर

घूमी हुई। बात करते समय लंगड़ाहट के कारण धड़ का बोझ तौलने के लिए रीढ़ पीछे झुकने से सीना और तन जाता और उस पर बार-बार मूंछों पर हाथ फेरते रहना। चौड़े कंधों पर रेलवे के पाइण्टमैन का नीली जीन का कुरता यों पड़ा रहता जैसे दसहरे के रावण के शरीर पर कागज के कपड़े। नीचे खुदरंग हो गई धोती का फेंटा घुटने तक कसा हुआ।

माली का नाम न पुकारा जाता था। मेहतरानी से लेकर हेड मास्टरनी तक सब आयु के सम्मान से उन्हें 'बुढ़ौ' पुकारते थे। इस सम्मान के कारण बुढ़ौ का मिज़ाज और तुनक था। युद्ध की महँगाई के कारण दूसरे बंगलों में माली २५)-३०) पा रहे थे, परन्तु बुढ़ौ अब भी १९) पर जमे थे। इसमें से भी ४) सुनामा की सिफ़ारिश से तरक्की का फल था। बुढ़ौ की इस कृपा के परिणाम-स्वरूप स्कूल पर उनका अधिकार भी कम न था। दिन में दो-एक बार छोड़ जाने की धमकी दे देते। सुनामा को सुनता पाते तो कहते, "अरे जानकार माली को काम की क्या कमी है? 'गन फटरी' (गन फैक्टरी) में माली ४०) ५०) पा रहे हैं। हुजूर बीबी जी के कदमों की बदौलत पड़े हैं।"

स्कूल के चपरासी कन्हाई और लखन, महरा और मेहतरानी बुढ़ौ से चुटकी लेने से बाज न आते—"बुढ़ौ लाम पर काहे नहीं चले जाते। अब बूढ़े भी भरती हो रहे हैं। फौज में बूढ़ों को दूध-भात मिलता है।"

बुढ़ौ हाथ में खुरपी साधे तन जाते—"हम सबका खेद देऊब! मुला इस्कूल के लिये आदमिन की कमी नहीं है बीबीजी के इकबाल से!" उनकी वह अदा सेना को हुकुम देते कमांडिंग आफिसर से कम न होती। सुनामा यह सब सुनती और उसके अन्तर्तम से आत्मीयता की गुदगुदी उठ आती! उसके मूंदे पतले ओठों पर आ जाता—"वान हिण्डनबर्ग!"

स्कूल के सेक्रेटरी, सेक्रेटेरियेट के अकाउन्टेण्ट मिस्टर भटनागर ने एक दिन बुढ़ौ के तनकर सलाम करने के जवाब में मुस्कराहट दबाकर उत्तर दिया था—"थैंक्यू वान हिण्डनबर्ग!" उस स्मृति से सुनामा के ओठों पर बार-बार मुस्कान आ जाती।

बुढ़ौ सुनामा के कमरे में नित्य ताजे फूल लगा जाते थे। यह फूल लगाना सुनामा के पद के विचार से नहीं, बुढ़ौ के अपने अधिकार से था। यों कोई अध्यापिका केशों में फूल खोंसने के लिये किसी फूल की ओर हाथ बढ़ाये तो वे एक पहर बड़बड़ाते रहते परन्तु सुनामा के फूलदान के लिये वे अपने भाईचारे

के नाते, जाने कहां-कहां से नायब फूल लाकर हुजूर बीबी जी के यहां सजा देते। फूलदान में फूल न अटने पर लोटा, गिलास जो मिल जाता, फूलदान बन जाता।

बुढ़ौ का फूल सजाने का कायदा सुनामा की आधुनिक सुरुचि के अनुकूल न था। आरम्भ में एक बार उस ने बुढ़ौ के लगाये फूलों को उठा ढंग से लगा दिया—गुलाब एक में, पिटूनिया दूसरे फूलदान में; लम्बी-लम्बी टहनियां स्वाभाविक गति से बलखाती हुईं और फैली हुईं। परन्तु बुढ़ौ ने फूलदान में सब फूल एक साथ सटा देने के अपने ढंग में परिवर्तन की आवश्यकता न समझी। एक दिन सुबह एक फूलदान खाली देख बुढ़ौ ने क्रुद्ध मुद्रा में पहाड़ी नौकर तेजू को सम्बोधन किया—"ए! ए फूल को उचासिस रहा?"

इस डांट से सुनामा का मन पुलक उठा। बुढ़ौ की पीठ पीछे से ओठों पर उंगली रख उस ने पहाड़ी नौकर को चुप रहने का संकेत कर दिया। वे फूल स्वयं सुनामा से ही मिलने आये एक सज्जन के बालक को थमा दिये थे। तब से वान हिण्डनबर्ग के हाथों सजाये गये उन फूलदानों में गुलाब के साथ गेंदा और सूरजमुखी विश्राम करते हुए शोभा बढ़ाते रहते और सुनामा को वह खटकता भी नहीं।

चौदह मास के संक्षिप्त समय में ही बुढ़ौ और सुनामा का सम्बन्ध गूढ़ कर देने वाली अनेक घटनायें हो गयीं। पूस का रोमांचकारी शीत बुढ़ौ एक पुराने सूती कम्बल में काट रहे थे। उन की फैली हुई गर्वित विशाल देह सोंठ की तरह सिकुड़ रही थी। सुनामा की दृष्टि बार-बार उस ओर जाती पर कह न पाती। बहुत साहसकर एक दिन बोली—"बुढ़ौ इस बरस बड़ा जाड़ा है।"

"क्या बताई हुजूर, ऐसा जाड़ा पचपन बरस की उमिर में नहीं देखा।" बुढ़ौ ने समर्थन किया।

"एक कम्बल है, बुढ़ौ। भाई ओढ़ा हुआ है। ऐसे ही धरा है। काम आ सकें तो···" वह चुप रह गयी।

"अरे हुजूर का ओढ़-पहरे में क्या?" एतराज अस्वीकार करने के लिए मूंड हिलाते हुए बुढ़ौ ने पाँव बदला।

सुनामा तुरन्त भीतर गयी और कम्बल लाकर बुढ़ौ की बांह पर रख दिया। बुढ़ौ कुछ बोल नहीं पाये। और फिर तीन दिन बाद बुढ़ौ को एक चीथड़े से कान बांधे देख उस ने एक तौलिया उन की ओर बढ़ा दिया।

स्कूल के पिछवाड़े बुढ़ौ के अपने हाथ से लगाये कटहल के पेड़ में पहला

फल लगा था। बुढ़ौ सुबह-शाम और दिन भर में तीन-चार बार उसे देख लेते। किसी को सुनता पाते तो हाथ की मुट्ठी में खुरपी भींच कर खबरदार कर देते—'जो एका हाथ लगाई हम ओका हाथ काट डारी !"

छोटा चपरासी चुटकी लेता—"फलां-फलां आदमी कटहल की ओर देख रहे थे···। भई मजा है तो नरम-नरम कटहल खाने में ! क्यों कन्हाई दादा, कटहल में क्या मसाला पड़ता है ?"

बुढ़ौ बौखला जाते और हाथ, गोड़ और सिर काटने की ललकार प्रायः सुनामा के कान में पड़ती रहती। वह मुसकान से ओंठ दबा कर रह जाती।

बुढ़ौ प्रायः ही उस वृक्ष के वंश की चर्चा करते, बदेवान के असली कटहल का बीज है। इस का फल बीस-पच्चीस सेर से कम न होगा। परन्तु बुढ़ौ अपनी आशंका दमन न कर पाए। फल प्रायः सेर भर ही हो पाया था कि एक सुबह दोनों हाथों में फल थामे उसे उन्होंने हुजूर बीबी जी के सामने पेश कर दिया।

× × ×

सुनामा ने सोचा, जाने इतने दिन बुढ़ौ ने कैसे सब्र किया होगा ? बोली—"हाय, अभी से काहे तोड़ लिया ?···बढ़ने देते !"

बुढ़ौ ने समझाया—"बुरे लोगन का क्या ठिकाना ? पहला फल चोरी न जाया चाही। इस से पेड़ कनिया जात है।"

"बड़ा बढ़िया कटहल है, बुढ़ौ। तुम अपने यहां बनाओ न !"

अपना भारी सिर हिला दुरुस्त पाँव पर धड़ को तौल बुढ़ौ ने गद-गद स्वर में उत्तर दिया—"ऐसा कैसे हो सकता है, हुजूर ! हम तो आप ही के लिए" ···और कुछ वे कह न पाए।

उस संध्या सुनामा ने स्वयं चौके में जा कटहल बनाया और बुढ़ौ की ज्याफत हुई। कटहल की तरकारी सब लोगों में बाँटी गयी।

देश में जैसे अन्न का अकाल पड़ा, उस से भयंकर स्थिति हो गयी कपड़े की। वस्त्र के अभाव में लाज ढाँकने में असमर्थ हो भले घरों की स्त्रियों के आत्महत्या करने और स्कूल की लड़कियों की परीक्षा देने न जा सकने के समाचार पत्रों में छपने लगे। सुनामा भी सफेद वायल की धोतियों के लिए तरस गयी। गरमी और बरसात की उमस में भी रेशमी साड़ियां निकाल कर

पहननी पड़ रही थीं। उन साड़ियों के पहनने में क्षेप भी होती, परन्तु लाचारी थी। सुनामा ने साड़ियों की जरी किनारी छुड़ा जहां तक बना सादा बना लिया था।

बुढ़ौ अखबार और ब्लैक-मार्केट कुछ नहीं जानते थे। इतना जानते थे कि धोती कहीं नहीं मिलती। धोती में चिन्दी और गांठ लगते-लगते वह गांठ और चिन्दी सहारने लायक नहीं रही। सीधे हुजूर बीबी जी से तो नहीं परन्तु उन्हें कमरे के भीतर जान, पहाड़ी नौकर तेजू और चपरासी लखन को सुना कर बुढ़ौ बोले—"अब बीबी जी हमका धोती न देहैं तो हम उन की धोती उठा लेबे!"

लखन ने टुचकारा दिया—बुढ़ौ रेशमी साड़ी पहिरहो?"

सुनामा भीतर सन्ध्या की चाय पी पान लगा रही थी। ओठों पर मुस्कराहट आ गयी। पान मुंह में रख वह बाहर आयी, बोली—"बुढ़ौ क्या करें; मर्दानी धोती है नहीं। चौड़े किनारे की पहरोगे?

बुढ़ौ हाथ में खुरपी सम्भाले लंगड़ाते चले जा रहे थे। पलट कर नहीं देखा, कहते गये—"तो फिर हम का करी?"

× × ×

दुर्गा पूजा की छुट्टियों के पहले दिन प्रातः फूलदानों में फूल सजा बुढ़ौ सुनामा के सामने आ खड़े हुए। स्कूल के नौकरों से सुनामा सिर नहीं ढंकती थी, रात दिन का साथ था। परन्तु बुढ़ौ को सामने खड़ा देख किसी संस्कारवश साड़ी का आंचल भीगे केशों पर रख लिया।

बुढ़ौ सिर झुकाये काठ सी खुश्क उँगलियों को परस्पर घिसते हुए बोले—"हुजूर बीबी जी, हमहु दिहात जाइब। हमहु का दुई हफ्ता की छुट्टी मिले।"

"काहे बुढ़ौ, क्या करोगे जाकर?" सुनामा ने प्रभात के स्नान की ताज़गी लिये अपने विशाल नेत्र बुढ़ौ की ओर उठा कर पूछा।

सही पांव पर अपना सीना तौल बुढ़ौ ने अपने पीले नेत्र छत की ओर उठा लिए—"हुजूर, लखन कहित हैं आपहू इलाहाबाद जाय रही हैं। हमका हियां नीक नहीं लागत?"

सुनामा के हृदय का रक्त चेहरे पर उछल आया—"नहीं बुढ़ौ, हम कहां जा रही हैं··· ? हम तो यहीं हैं।" उस के नेत्र हाथ की बुनाई पर झुक गए।

बुढ़ौ ने पांव बदला और आश्वासन से उत्तर दिया—"तौ फिर ठीक है,

हुजूर !···अफसर न रहे तो हमका नीक नहीं लागत। गरमी की छुट्टी में आपहु चली गई रहीं। हमका बहुत अकरासा लागत रहा।"

सुनामा की दृष्टि बुनाई में और गहरी पड़ गई। उस ने बात बदली—"बुढ़ौ, जाड़े के नए फूल नहीं लगाये ?"

× × ×

सुनामा इलाहाबाद और आगरा पीछे छोड़ आई थी परन्तु प्राणों के पीछे लगा जीवन का द्वन्द साथ ही आया। सेक्रेटरी साहब आदर से पेश आते थे और फिर बुरा मान गए। उन से मन में कहा 'मैं क्या करूँ ?···मेरी बला से !'

सेक्रेटरी मिस्टर भटनागर की नाराजगी का कारण छिपा न था। प्रबन्ध कमेटी के प्रधान लाला बिशननारायण के लड़के के विवाह की पार्टी में सुनामा गयी थी। सेक्रेटरी साहब ने भी उसे अपने यहां होली की पार्टी में निमन्त्रित किया। वह जा न सकी। तब से दो-तीन बच्चों के संरक्षकों ने स्कूल में प्रबन्ध की खराबी की शिकायतें लिख भेजीं। पहले सुनामा झुंझला कर रह गयी और फिर भांपने लगी।

दुर्गा पूजा की छुट्टियों के पहिले ही, रविवार की संध्या को प्रबन्ध कमेटी की बैठक हुई। कमेटी में प्रश्न आया कि पिछले सप्ताह 'अ' और 'ब' श्रेणी की पढ़ाई बिल्कुल नहीं हुई। वर्षा के कारण बच्चों को तीन दफे घर लौट जाना पड़ा।

सुनामा ने उत्तर दिया—"उन के लिए इमारत में स्थान नहीं है ! सब बच्चे किसी एक कमरे में बैठ नहीं पाते। मौसम साफ रहने पर तो बच्चों को वृक्षों के नीचे बैठाया जा सकता है। वर्षा के समय उपाय नहीं। इन श्रेणियों में अधिक बच्चे न लिए जायं तो अच्छा है।"

कमेटी के दूसरे मेम्बरों को सम्बोधन कर सेक्रेटरी साहब बोले—"इमारत के दो कमरे हेडमिस्ट्रेस के पास हैं। यह कमरे कुछ समय के लिए दिए गए थे कि वे अपने लिए मकान का प्रबन्ध कर लें। अब एक वर्ष से अधिक समय हो गया है।"

सुनामा के हृदय पर अपमान के घन की चोट पड़ी। तिलमिला कर रह गयी। रायबहादुर सीताराम ने कहा—"ठीक है, परन्तु शहर में कहीं बालिश्त

भर जगह खाली नहीं। बच्चों की संख्या कम करना ही ठीक है।"

स्कूल का हिसाब आडिटर से पास कराना जरूरी था। दुर्गा पूजा के अवकाश में सेक्रेटरी साहब ने रजिस्टरों का मुआइना आरम्भ किया। कभी वे रजिस्टर मँगवा भेजते। कभी स्वयं स्कूल में आते और कभी हेडमिस्ट्रेस को बुलवा भेजते। बस चलता तो सुनामा इनकार कर देती परन्तु नौकर थी—विवश थी।

बुढ़ौ जाकर रिक्शा लाये और सुनामा सेक्रेटरी साहब के यहां गयी। लौटी तो सूर्यास्त हो चुका था। चेहरा ऐसे भर रहा था कि आंखें झड़ पड़ेंगी। रिक्शा स्कूल के अहाते में घूमा तो बुढ़ौ फाटक पर बैठे सुरती मलते दिखाई दिए—जैसे प्रतीक्षा में हों परन्तु सुनामा पुकार न सकी।

रिक्शा से उत्तर सुनामा बरामदे में खड़ी बटुए में से रेजगारी ढूंढ़ रिक्शा का भाड़ा चुका रही थी। इतने में बुढ़ौ फाटक से बरामदे तक आ पहुँचे। सुनामा को अब भी बिना बोले जाते देख बुढ़ौ बोले—"बड़ी अबेर हो गयी हुजूर बीबी जी!"

"यह सेक्रेटरी प्राण लेगा और क्या!" झुंझला कर सुनामा भीतर जा पलंग पर पड़ गई। उस का मस्तिष्क मोटर के आर्मचेर की तरह घूम रहा था—लानत है ऐसी नौकरी पर। आगरे और इलाहाबाद में ही उसके लिए कहां शरण है।

बुढ़ौ सांझ की रोटी भी सुबह ही सेंक लेते थे। सांझ के लिए प्याज की चटनी और बांट ली थी। उसी से रोटी चूर कर कौर निगलने को थे कि दीवार की दूसरी ओर क्वार्टर में कन्हाई और लखन की बात-चीत सुनाई दी। यों बुढ़ौ कम सुन पाते थे। कम सुन पाने से बीसियों झंझटों से बचे रहते परन्तु मतलब की बात या चुपके से कही बात पकड़ लेने में उन के कान बहुत तेज थे।

लखन ने कहा—"का महतो! बड़ी बीबी अभी लौटी हैं सेक्रेटरी साहब के यहां से। रोई-सी जान पड़ रही थीं।"

कन्हाई के मुख में रोटी का ग्रास था। उलझे हुए स्वर में उसने उत्तर दिया—"सेक्रेटरी बड़े खिलाड़ी हैं। पीछे पड़े हैं बड़ी बीबी के। पहले तो बीबी ऐंठीं। अब रुक्का आता है तो दौड़ी जाती हैं। अरे भाई, अफ़सर हैं, मन चाहे घर बुला लें, मन चाहे यहां आ जायं!" कन्हाई और लखन में देर तक बात चलती रही। बुढ़ौ सुनते रहे, जैसे घात ले रहे हों।

बुढ़ौ की थरिया की रोटी पेट में न जा सकी। बहुत देर वैसे ही बैठे रहे और फिर रोटी उठा कर एक पेड़ की जड़ पर रख दी कि दिन चढ़े कुत्ता खा लेगा।

रात में दोनों चपरासी, महरा और माली बारी-बारी से पहरा देते थे। जिस का पहरा समाप्त होता, दूसरे को जगा देता। बुढ़ौ का पहरा बारी से चौथे पहर का था। अपनी खटिया उन्होंने रोज से कुछ आगे, बरामदे की ओर कर डाली की बीबी जी का बरामदा दीखता रहे। साथ में लठिया लेकर लेटे। रात भर आंख नहीं लगी, जैसे किसी आशंका में हों। दिन चढ़े बीबी जी के यहां फूल देने गये तो वे गुसलखाने में थीं। मन बहुत खिन्न रहा। अभ्यासवश रोटी सेंकी, दाल भी बनाई पर खाते न बनी। सुनामा के बरामदे की ओर कई बार दृष्टि गयी। वह छोटी सी मेज पर बड़े-बड़े रजिस्टर फैलाये उन में दृष्टि गड़ाये थी···बहुत उदास।

चौथे पहर सेक्रेटरी साहब की छोटी सी मोटर स्कूल के अहाते में आयी और हेडमास्टरनी के दफ्तर के सामने आकर रुकी। कन्हाई सिर पर टोपी सम्भालता दौड़ा आया।

"हेडमिस्ट्रेस को दफ्तर में बुलाओ!" भटनागर साहब ने हुकुम दिया।

सन्देश पा सुनामा मुसी हुई साड़ी बदल, सिर में कंघी कर, कन्हाई से रजिस्टर उठवा दफ्तर की ओर चली। बग़ल के बरामदे से सामने की ओर घूमते ही उस के कदम उठ न सके।

सेक्रेटरी साहब के सामने, कंधे पर पहरा देने की लम्बी लाठी लिये बुढ़ौ अपने सही पांव पर उचक रहे थे। दायें हाथ की उंगली दिखाकर वे ललकार रहे थे—"मुटरी-उटरी सब चूर कर देब। ई हाता में कदम रखियो ना! सब अपसरी झार देब···!"

सेक्रेटरी साहब का चेहरा बिलकुल रक्तहीन था। आंखें भय और विस्मय से फैल रही थीं। सुनामा को स्वयं काठ मार गया। कन्हाई तुरंत आगे बढ़ा। भटनागर साहब की आड़ ले बुढ़ौ की लाठी उस ने अपने हाथ में ले ली। लखन और महरा भी माजरा देखने आ पहुंचे।

विपत्ति से रक्षा का श्वास ले सुनामा आगे बढ़ी और बड़ी कठिनता से कह पायी—"क्या बात है?"

बुढ़ौ बाहें फेंकते, बकते, लंगड़ाहट से उचकते अपनी कोठरी की ओर चले गये।

निर्भय हो सेक्रेटरी साहब ने अंग्रेजी में सुनामा को सम्बोधन किया—"क्या यह आदमी पागल है? पहले भी कभी ऐसा व्यवहार किया है!"

"नहीं तो ! कभी देखा नहीं·····। किसी ने कहा भी नहीं । गम्भीर और जिम्मेवार आदमी था ।"

सेक्रेटरी साहब पतलून की जेब में हाथ डाले अपने जूतों की नोक की ओर देखते रहे । दृष्टि झुकाये ही बोले—"हो सकता है·····लेकिन खतरनाक बात है । लड़कियों और बच्चों का मामला है । आप इसे फौरन डिसमिस करके अहाते से बाहर निकलवा दीजिये ।" उन्होंने कन्हाई की ओर देखा, "सुना ?"

अपनी बात चपरासियों और महरे को समझाने के लिए भटनागर साहब ने हिन्दी में दोहराया—"खतरे को रखना ठीक नहीं । अभी निकाल दीजिये । जरूरत हो, थाने में रिपोर्ट कर पुलिस बुलवा लीजिये । मैं भी थाने में फ़ोन कर दूंगा ।" रजिस्टर देखने का उत्साह सेक्रेटरी साहब को न रहा । मोटर में बैठ वे तुरन्त लौट गये ।

सुनामा के पांव कांप रहे थे । दफ्तर में जा कुर्सी पर बैठ गयी । कोहनी मेज पर टिकी थी और हथेली पर ठोड़ी । दोनों चपरासी आज्ञा की प्रतीक्षा में पीछे खड़े थे । सुनामा का रोम-रोम कांप रहा था । मुख से शब्द निकलना असम्भव था । पच्चीस मिनिट गुजर गये ।

कन्हाई बोला—"हुजूर क्या हुकुम है ?"

सुनामा निश्चय न कर पाई थी, वह माली को निकाल दे या स्वयं चली जाय ! उस कठिन द्वंद्व में भी आतंकित कल्पना दूर देश घूम आयी । कहीं दूर, हरे-भरे स्वतंत्र दिहात में, वह और बुढ़ो·····? बुढ़ो खेत संभालने जायं और वह रोटी सेंक कर प्रतीक्षा करे !

कन्हाई के टोकने से सुनामा ने अपनी निर्बलता झुंझलाहट में छिपाई—"क्या है ?"

"हुजूर माली के वास्ते·····सेक्टेरी साहब कहेन·····।"

सुनामा हिल न सकी । जान पड़ा, सिर दरद से फट रहा है । न जाने कितने मिनिट बीत गये । चपरासी और महरा खड़े रहे । थक कर अनेक बार उन लोगों ने पांव बदले, जम्हाई ली । सुनामा की तन्द्रा भंग न हुई । कन्हाई ने फिर टोका—"हुजूर !"

सिर दर्द से सुनामा के नेत्र बिल्कुल रक्त हो गये थे । पूर्ण संयम से अपने आपको वश कर उसने कठोर स्वर में उत्तर दिया—"क्यों बार-बार सिर खाते हो ?···कह तो दिया एक बार !···जाओ निकाल दो !"

"हुजूर उसकी तनखा....." कन्हाई ने साहस किया।

झपाटे से मेज का ड्राज खींच सुनामा ने दस-दस के दो नोट निकाल फर्श पर फेंक दिये और सबको धमकाया—"जाओ यहां से !"

सिर आंचल में लपेट उसने मेज पर रख दिया। जान न पड़ा कितना समय बीत गया। वैसी ही मूर्छा जैसी वैधव्य के प्रथम आघात से आ गयी थी। सुनाई दिया—"हुजूर, माली नमस्ते करने को खड़े हैं।" कुछ ठीक से समझ भी न पायी और आंसू से भीगे आंचल में लिपटा सिर उठा सकना भी सम्भव न था। भीतर दबी आग भड़क उठी, "जाओ यहां से !"

कुछ मिनिट बाद सुनामा संभली। रुलाई के वेग ने उसे अवश कर दिया। अविरल आंसुओं को रोकना सम्भव न था और आंसू भरा मुख स्कूल के नौकरों को दिखाना भी सम्भव न था परन्तु बुढ़ो जा रहे थे...।

रह न सकी। सिर उठाकर खिड़की से झांका। आंसू भरी पलकों में से दिखाई दिया—वही नीला कुरता पहने, बगल में हलका बुचका दबाये, लाठी टेकते, लंगड़ाते बुढ़ो फाटक से निकल रहे थे। सुनामा का मन हुआ चीख उठे—बुढ़ो ठहरो !

परन्तु मुख्याध्यापिका के संयम ने ओठ खुलने न दिये। उसके हृदय ने आह भरी—वान हिण्डनबर्ग ! और आंसू भरी पलकों के सामने लंगड़े बुढ़ो वान हिण्डनबर्ग से कहीं अधिक गरिमामय जान पड़े.....वे सुनामा के हृदय की कितनी गरिमा लिये चले जा रहे थे।

भाग्य का चक्र

विधाता के यहाँ भाग्य के कारखाने में संख्यातीत प्राणियों के भाग्यचक्र अपनी दाँतें एक दूसरे में फँसा अनेक दिशाओं में चला करते हैं। कौन चक्र किस चक्र को कब और क्यों किस ओर चला कर प्राणियों को इस संसार में ऊपर, नीचे, दायें, बायें फेंक देता है; कब किसी को ऊपर उठा देता है या किसी की अस्थि-मज्जा कुचल देता है, कहना कठिन है। प्राणी बेचारा कुछ जान या समझ भी नहीं पाता।

नन्दनसिंह कलकत्ता में भवानीपुर के समीप काचीपाड़ा मुहल्ले में, बंगाली परिवारों से भरे एक बड़े मकान में, दुमंजिले की एक कोठरी और बरामदा किराये पर लेकर रहता था। कलकत्ते में पंजाबियों के प्रति विशेष श्रद्धा नहीं है; उन्हें बल्कि कुछ आशंका से ही देखा जाता है। पर नन्दनसिंह की बात दूसरी थी, या भाग्य के कुछ चक्रों को यों ही घूमना था।

हुआ यह कि मुहल्ले में एक पान-बीड़ी की दूकान थी। पनवाड़ी की असावधानी से या उसका भाग्य चक्र यों घूम गया; गाहकों को बीड़ी सुलगाने की सुविधा के लिये, दुकान की काठ की छत से सुलगा कर लटकाई नारियल की रस्सी से किसी तरह आग लग गई। अगल-बगल के दो मकानों को लपेट कर आग ने विराट रूप धारण कर लिया।

आग के विभ्राट से बंगाली भद्र परिवारों में 'सर्वनाश होलो!' का चीत्कार मच गया। समीप ही बढ़ई का काम करने वाले और टैक्सी और बस के ड्राइवर पंजाबी लोग कोठरियों में रहते थे। चीत्कार के उस वीभत्स काण्ड में पंजाबियों ने दौड़कर आग बुझा दी। आग का संकट टल जाने पर उसकी चर्चा करते

समय वंगाली मोशाय ने, कृतज्ञता, सहृदयता और विस्मय से आंखें फैलाकर स्वीकार किया—"पंजाबीरा निश्चय वीर पुरुष !"

नन्दनसिंह कहीं कोई जगह न मिल सकने के कारण अपने गांव के पिरथीसिंह ड्राइवर की कोठरी में ही डेरा डाले था। अग्नि से युद्ध में उसने विशेष साहस दिखाया था इसलिये उसकी चर्चा भी विशेष रूप से हुई—"नन्दनसिंह कि वास्तवेई नन्दकाननेर सिंह !"

इस घटना के बाद अनेक वंगाली परिवारों से बसे उस बड़े मकान में, उत्तर की ओर रहने वाले श्रीयुत् विपिन घोष मोशाय ने अपने भाग की सब से उत्तर वाली कोठरी और बरामदा नन्दनसिंह को बारह रुपये माहवार में किराये पर दे उसकी सहायता करना स्वीकार कर लिया। मकान का यह लगभग चौथाई से कम भाग आधे मकान के किराये में पाकर भी नन्दनसिंह को सहायता ही मिली।

मैट्रिक तक पढ़ने के वाद रोजी की खोज में नन्दनसिंह कलकत्ता पहुंचा था। वह शहर में मुफस्सिल में लुधियाने की बनी स्वदेशी वस्तुओं का व्यापार करता था। भवानीपुर के पंजाबियों में रहने से बंगाल में आकर भी वह बंगालियों से दूर रहा। बंगाल को जानने की इच्छा उसकी अपूर्ण ही रही। आग की दुर्घटना के चक्र ने उसके भाग्य को अवसर दिया। बंगाली जीवन की झलक उसे मिलने लगी।

कलकत्ते में अशिक्षित पंजाबी भी बंगाली बोल और समझ लेते हैं। बंगला पढ़ना सीख लेने पर नन्दनसिंह की नवयुवक कल्पना रवीन्द्र, शरत और सौरीन्द्र की आख्यायिकाओं का नायक बनने के स्वप्न देखने लगी। बंगाल के प्रति अनुराग से उसकी भावना भीग गई। घी निचुड़ते 'कड़ाह-प्रसाद' (हलवे) की अपेक्षा चाशनी में तैरते रसगुल्ले उसे अधिक लुभाने लगे। छाछ के छन्ने (कटोरे) से अधिक रुचिकर 'चायेर कप' (चाय का प्याला) हो गया। पंजाब के सपाट मैदानों में हू-हू करती लूह और घास पर जम जाने वाले पाले की पपड़ी वीभत्स जान पड़ने लगी और निरन्तर सुर्मई मेघों से छाया आकाश और दक्खिन वायु उसे सुहाने लगे। स्वस्थ, सबल, सुडौल, सलवार और कुर्ता पहने, सिर पर ओढ़नी की गेंडुली पर मटका टिकाये पंजाबी देहात की, सूर्य के ताप से तपा गेहुआं रंग लिये पंजाबी स्त्रियां उजड्ड जान पड़ने लगीं। कछुये की तरह अपने ही भीतर सिमिट जाने के लिये यत्नशील, सांवली, नमकीन, चपलाक्षी बंगाली

ललनाओं के महावर रचे चरण उसका मन व्याकुल करने लगे ।

× × ×

अमला की आयु का प्रश्न विवादास्पद था । म्युनिसिपैलिटी का खाता देखने से उसकी आयु सत्रह से ऊपर होती परन्तु दूरदर्शी बंगाली गृहस्थ ने कन्या के विवाह में स्वाभाविक आशंका के विचार से, लड़की की आयु गणना में सावधानी कर, अभी तक उसे पन्द्रह से बढ़ने न दिया । कलकत्ते के अभिज्ञ वातावरण में समझ-बूझ और शरीर की उठान में अमला पंजाब की बीस बरस की दिहातिन को बहुत कुछ सिखा सकती थी । मां ने बहुत पहले ही दूसरे लोक में स्थान पा लिया था । विमाता के व्यवहार में प्रकट विरोध की तीव्रता न थी तो दूसरे की सन्तान के प्रति ममता की चौकसी भी न थी । इस उपेक्षा का अर्थ अमला के लिये हरदम की रोक-टोक और नोक-झोंक से मुक्ति था । मां प्रायः नीचे के खण्ड में रहती और अमला ऊपर ।

दुमंजिले पर अमला की कोठरी से आंगन पार नन्दनसिंह की कोठरी का दरवाज़ा दिखायी देता था । आने-जाने के लिये नहीं परन्तु दृष्टि के लिये राह थी । दोपहर में सिलाई की मशीन चलाते समय गुनगुनाते हुये या कोई दूसरा काम करते समय अमला उस ओर देखती तो नन्दनसिंह प्रायः दिखायी देता । सुबह-शाम वह अपने सामान के नमूने की पेटी ले फेरी के लिये जाता और दोपहर को आराम करता । मां नीचे रहती थी, घोष बाबू दफ्तर में । मन में कुभावना न होने पर भी नन्दनसिंह की दृष्टि आंगन पार अमला की ओर बरबस जाना चाहती । यों शायद एक बार देख लेने पर वह चाहे यत्न से न भी देखता परन्तु अपनी दृष्टि का प्रभाव अमला के व्यवहार में देख, देखने की इच्छा सार्थक हो उठी । नन्दनसिंह के मस्तिष्क में एक भारीपन सा आ गया और सीना जैसे कुछ फैलकर सांस की गहराई बढ़ गयी ।

नन्दनसिंह की दृष्टि से अमला कुछ झुक और सिमट सी जाती परन्तु अपना स्थान छोड़कर हट भी न पाती, जैसे·····जाल में पंजे फंस जाने पर बटेर छटपटा कर व्याकुल तो होता है पर उड़ नहीं सकता । यदि दोपहर में नन्दनसिंह मकान पर न रहता या उस ओर के किवाड़ बन्द रहते तो अमला को एक अभाव सा अनुभव होता और बेबसी का क्रोध सा भी । उस समय या

तो अमला के हाथ से फर्श पर कोई वस्तु गिर कर आहट हो जाती या अपनी ओर से किवाड़ों को वह काफी खटके से खोल या बन्द कर देती। ऐसा होने से नन्दनसिंह की ओर के किवाड़ खुल जाते।

आरम्भ में नन्दनसिंह अमला की कोठरी की ओर झांकता तो भद्रता और आशंका के विचार से किवाड़ों को यों बन्द करके कि वह देख तो ले पर दिखाई न दे। परन्तु उसने अनुभव किया कि दिखाई दिये बिना देखना निष्फल है। अमला का ढंग दूसरा था, वह देखती न थी, केवल दिखाई दे जाती थी और ऐसे कि उसे नहीं मालूम कि वह दिखायी दे रही है।

प्रथम तो नन्दनसिंह के बंगाली न होने के कारण उसके प्रति भद्रलोक की मर्यादा से संकोच और सम्मान की उतनी आवश्यकता न थी और फिर आग की दुर्घटना के समय वह अमला और उसकी मां की कीचड़ से लथपथ, विक्षिप्त अवस्था में पानी की बाल्टियां ले-ले कर घर में सब जगह कूद-फांद आया था। उनके मकान में आ बसने पर पिछली दुर्गापूजा के अवसर पर उसने अमला की मां, अमला और बीनू-चीनू को गुजराती छाप की साड़ियां उपहार में भेंट की थीं। बीच में कुछ दिन के लिये गांव जा लौटने पर उसने अपने देश द्वाबे का कुछ घी भी भेंट किया था। इस सहृदयता की स्वीकृति में घोष बाबू भी प्रायः मछलीं का झोल बीनू-चीनू के हाथ उसे भिजवाते रहते।

अमला की विमाता स्वभाव से ही आत्मरत होने पर भी अपनी सन्तान के प्रति नन्दनसिंह की उदारता देख उसे सुपुरुष मान चुकी थी। परायेपन की जगह पारिवारिक आत्मीयता ले चुकी थी। भाग्य के अदृश्य चक्र की दांतों ने अमला को नन्दनसिंह के बहुत समीप ला खड़ा किया।

एक दिन आषाढ़ की दोपहरी में नीचे ठंडे में मां सो रही थी। अमला हवा के दुमंजिले के बरामदे में बैठी सिलाई कर रही थी। नन्दनसिंह लौटा न था। अमला क्षोभ अनुभव कर रही थी। नन्दनसिंह के भाग का बरामदा लोहे की छड़ों द्वारा शेष मकान के बरामदे से अलग था। नन्दनसिंह के आने पर उसने शिकायत की नजर से एक बार देख सिर झुका लिया।

माथे का पसीना पोंछते हुये नन्दनसिंह ने मुस्कराकर बंगला में पूछा—"केनो (क्यों) ?"

नन्दनसिंह का बंगला बोलना उसके उच्चारण के कारण मज़ाक बन जाता था। बंगला पर नन्दनसिंह का यह अत्याचार अमला को अत्यन्त मधुर लगता

और क्रोध टिक न पाता। परन्तु क्रोध का अधिकार क़ायम रखने के लिये मुंह फुला, आंखें झुकाये ही अमला ने कहा—"एई ते भालो, आपनी बिये करे पंजावी बऊ के निये आशुन। आमरा गल्प-शल्प करवो। ए रकम ऐकला बोशेर यन्त्रणा और सह्यना।" (इससे तो अच्छा है कि ब्याह कर पंजावी बहू ले आओ ! उसी से कुछ बातचीत करेंगे। यों अकेले बैठे रहने की यंत्रणा असह्य हो जाती है।)

नन्दनसिंह सहसा गम्भीर हो गया—"अमला, एई तोमार मोहब्बत। शे आमि करते पारी ना। आमार जन्ये तुमि शब किछु।"

अमला ने सिलाई की मशीन पर झुक होंठ दवा चुटकी ली—"केनो पंजाबी मेये तो वेश सुन्दरी·····फरशा, फरशा गायेर रंग·····देह ओ बलिष्ठ·····! (क्यों, पंजाबी लड़कियां तो बहुत सुन्दर होती हैं। गोरा-गोरा रंग, बलिष्ठ शरीर !)" नन्दनसिंह केवल गहरा सांस लेकर रह गया।

इस प्रकार मान-अभिनय से तीखी होती जाती प्रेम की मिठास भरी पीड़ा में, उस निकटता को भी असह्य दूरी अनुभव करते कई दिन निकल गये। जैसे पिंजरे में बन्द पक्षी से मुक्त पक्षी प्रेम कर छटपटा रहा हो ! प्रेम की सार्थकता पिंजरे का द्वार खुले बिना कैसे हो ?

× × ×

एक दिन दोपहर को बरामदे की सीखों के समीप दीवार से चिपक अमला ने अत्यन्त दुख भरे स्वर में नन्दनसिंह से पूछा—"मेरे मर जाने का समाचार सुनकर तुम क्या करोगे ?"

नन्दनसिंह के मुख से मुस्कराहट की रेखा उड़ गयी। वह गम्भीर प्रश्नात्मक दृष्टि से अमला की ओर देखता रह गया। धोती की खूंट के धागे उंगलियों में बंटते हुये अमला ने कुछ हिन्दी-मिली बंगला में उत्तर दिया—"आजकल बाबा ब्याह की बात बहुत चलाते हैं। गांव-देहात के एक अनजाने बूढ़े के हाथ पड़, जन्म भर कलपने से पहले ही मैं शरीर पर केरोसिन तेल की बोतल उड़ेल जल मरूंगी। जन्म भर की पीड़ा से तो यह क्षण भर का दुख भला।"

अधीर स्वर में नन्दनसिंह ने पूछा—"क्या कहती हो अमला !"

"कहती क्या हूं !" अमला के आंसू बह आये, "बाबा को तो किसी प्रकार

जाति की रक्षा करनी है और विमाता को पराये पेट की लड़की के लिये दो मुट्ठी भात भारी हो रहा है।"

नन्दनसिंह कुछ बोल न सका। मन का क्षोभ वश में करने के लिये उसने लोहे की छड़ों को अपने हाथों की मुट्ठियों में जकड़ लिया।

आंसू पोंछ अमला बोली—"तुम्हें तो मैंने केवल दुख ही दिया। कभी कुछ अनुचित कहा हो तो क्षमा कर देना।"

"अमला!" लोहे की सीखों को और भी अधिक कठोरता से दबाकर नन्दनसिंह ने कहा, "क्या कह रही हो तुम! मेरी जान रहते यह नहीं हो सकता। यहां मैं बेबस हूं। तुम बंगाली हो और मैं पंजाबी। फिर भी जब तक गर्दन पर सिर है·····समझी! हमारे पंजाब देश में ऐसा कोई विचार नहीं चलता·····समझीं!"

× × ×

खिदरपुर घाट पर लगे रंगून जाने वाले जहाज के डेक पर स्थान घेर लेने के लिये मुसाफिर सीढ़ियों पर धकापेल मचाये थे। नन्दनसिंह ने सीढ़ी पर पांव रखा ही था कि उससे आगे, एक बड़े ट्रंक पर स्टील का सूटकेस रखे कौशल से चढ़ाने वाला कुली किसी तरह झटका खा गया। स्टील केस नन्दनसिंह के सिर पर आ गिरा।

इधर-उधर से लोग दौड़ पड़े। लहूलुहान नन्दनसिंह को एक ओर लिटा दिया गया। उसके पीछे पंजाबी पोशाक में घूंघट निकाले एक जवान स्त्री खड़ी थी। वह स्त्री घबराहट में रो पड़ी।

घायल का पता जानने के लिये पुलिस ने उस पंजाबी वेशधारी युवती से हिन्दुस्तानी में प्रश्न किया। कुछ देर केवल रोने के बाद उसने बंगला में उत्तर दिया कि वे लोग पंजाब के रहने वाले हैं और बर्मा जा रहे थे।

हिन्दुस्तानी न समझ कर बंगला बोलने वाली पंजाबी स्त्री के सम्बन्ध में पुलिस को सन्देह हो गया। जख्मी नन्दनसिंह और अमला पुलिस की हिरासत में ले लिये गये। जहाज चला गया। अमला फूट-फूट कर रो रही थी। वह किसी का कुछ चुराकर नहीं भाग रही थी। वह केवल मिट्टी का तेल सिर पर डाल कर जल मरने से बचना चाहती थी।

× × ×

काचीपाड़ा के अनेक बंगाली भद्रलोक घोष बाबू को साथ ले थाने में हाजिर हुये। अनेक लोगों के समझाने पर बंगाली कोतवाल बसु महाशय ने दीन बंगाली भद्र समाज के सम्मान के प्रति करुणा प्रकट कर घोष बाबू की, अविवाहित युवती लड़की को बिना चौकसी घर में रखे रहने के लिये भर्त्सना की। पुलिस, कोर्ट में जाने के बाद लड़की का विवाह असम्भव न कर देने के विचार से उन्होंने दबाकर मामला कागजों में दर्ज किये बिना ही छोड़ दिया।

परन्तु कम आयु की नाबालिग बच्ची को भगाकर ले जाने वाले पंजाबी को कलकत्ते में रहने देना सुरक्षित न था। उस पर अनेक अपराधों का सन्देह कर उसे कई दिन लाल बाजार की हवालात में रखा गया और पंजाब से भागा हुआ अपराधी होने के सन्देह में उसे हिरासत में ही शिनाख्त के लिये पंजाब भेज दिया गया।

× × ×

काचीपाड़ा के प्रौढ़ भद्र समाज ने दो सनातन सत्य पुनः स्वीकार किये : एक तो पंजाबी प्रकृति से ही बदमाश होता है, दूसरा—जवान अविवाहित लड़की घर में रखना ज्वालामुखी पर निश्चिन्त सोने के समान है।

अमला का विवाह तुरन्त ही हो गया। विवाह के बाद वह मुफस्सिल में चली गयी। विवाह के समय उसे पति के समीप बैठा जब शुभ दृष्टि के लिये नव दम्पत्ति को चादर की ओट कर एक दूसरे को देख लेने का अवसर दिया गया, वह आंखें खोल ही न पाई। अब पति के दर्शन और स्पर्श के पश्चात् फिर केरोसिन तेल से स्नान कर दियासलाई की ज्वाला से मांग में सिन्दूर भर लेने की बात मन में आने लगी। परन्तु उसने मन को समझाया : जो भाग्य में बदा है वह तो सहना ही होगा। काली माई से मृत्यु द्वारा दुखमय जीवन से त्राण पाने की प्रार्थना कर रह गई।

परन्तु अमला का भाग्यचक्र रुका नहीं। पांचकौड़ी बाबू प्रथम पत्नी की मृत्यु के पश्चात् तीन सन्तानों के पालन के लिये, माता की आवश्यकता होने से कम दहेज पर भी घोष बाबू को कन्यादान के पुण्य का अवसर देने के लिये तैयार हो गये थे। परन्तु घोष बाबू उतना भी न कर सके। नकदी देना भाग्य से उनके बस का न था, इसलिये घर की जायदाद सोने का ठोस गहना देकर

ही उन्होंने जामाता को सन्तुष्ट कर दिया था। पांचकौड़ी बाबू वह गहना बेचने गये तो पर अमला के भाग्य से सोने का वह गहना केवल मोटा मुलम्मा निकल आया।

बाजार में मुलम्मे को खरा सोना बनाकर बेचना सरकार की दृष्टि में दण्डनीय अपराध है; परन्तु दहेज में खोटा गहना देने के सम्बन्ध में कोई कानून नहीं और न यह धोखा प्रमाणित हो जाने पर विवाह ही रद्द हो सकता है।

ससुर के धोखे की शिकायत करने कलकत्ते जाकर पांचकौड़ी बाबू को मालूम हुआ कि धोखा केवल रकम के सम्बन्ध में ही नहीं हुआ, घर से भागी लड़की उनसे ब्याह कर उनकी जाति भी नष्ट कर दी गयी। ऐसे दगाबाज ससुर से बदला लेने की केवल एक ही राह थी। पांचकौड़ी बाबू ने अमला को गर्दन पकड़ घर से निकाल दिया।

ससुर गृह में प्रवेश करते समय अमला का हृदय निराशा और दुख से फटा जा रहा था। उस घर से निकाली जाते समय यदि उसके प्राण शरीर से निकल जाते तो वह सौभाग्य समझती। पति के घर से निकाली जाकर अमला कितनी देर विमूढ़ हो घुटने पर माथा टेके सड़क किनारे पेड़ के नीचे बैठी रही। वह कुछ समझ न पा रही थी। कहां जाये? जब वह अपनी इच्छा से घर छोड़ गयी थी, उसे पकड़ लाने के लिये पुलिस दौड़ी चली आयी। अब घर से निकाल दिये जाने पर घर में जगह दिलाने के लिये पुलिस की शक्ति सहायता के लिये न आई। सड़क पर से गुजरने वाले फटी धोती के अवगुण्ठन में लिपटी, सड़क किनारे बैठी युवती नारी को विस्मय, करुणा और रहस्य की दृष्टि से देख चले जाते परन्तु उस उलझन में फंसने के लिये कोई उससे कुछ पूछने न आया।

अंधेरा हो गया। अमला के विजड़ित मस्तिष्क और पथराई आंखों के सम्मुख सम्पूर्ण संसार एक भयंकर भूडोल से विचलित और छिन्न-भिन्न हो रहा था, परन्तु संसार उसकी चिन्ता न कर अपनी अनेक धुरियों पर सुनिश्चित रूप से घूमता जा रहा था। सड़क पर से गुजरने वाले अनेक पथिक, अनेक प्रकार की गाड़ियां एक के बाद एक आ और जा रही थीं। सम्मुख आधे फर्लांग पर, माथे पर लगी दैत्य की आंख से मील पर तक अन्धकार को चीरती हुई, पृथ्वी को कंपाती हुई अनेक रेलगाड़ियां दुर्दम वेग और शक्ति से दौड़ी चली जा रही थीं। अमला के मस्तिष्क की जड़ता कुछ कम होने पर रेल की

गड़गड़ाहट ने ही उसका ध्यान आकर्षित किया। वह गाड़ी ही मृत्यु द्वारा उसे शरण दे सकती थी।

शरण की खोज में अमला उठी और अवसाद की जड़ता में अपना मुख और सिर धोती के आंचल में लपेट मर जाने के लिये रेल की लाइन पर जा लेटी।

उसे अनुभव हुआ, पृथ्वी कांपने लगी और फटकर उसे अपने गर्भ में शरण दे देगी। रेल की चीखें सुनाई दीं। अमला को अनुभव हुआ कि पहिया उसके ऊपर से गुजर ही रहा है·····मुक्ति·····!

अनेक ठोकरें खाकर वह उठी। इंजन के माथे की आंख उसको क्रोध से भस्म कर देना चाहती थी। पूछे जाने पर वह कुछ उत्तर न दे सकी। लोग उसे बांहों से थाम कर ले गये। उसे गाड़ी पर बैठा दिया गया। अन्त में वह लोहे के सींखचे जड़ी कोठरी में ताला लगाकर बन्द कर दी गई।

कुछ स्वस्थ होने पर अमला ने उत्तर दिया, वह मर जाने के लिये रेल की पटरी पर लेटी थी। उस पर मुकद्दमा चला। रेल की पटरी और इंजन की शक्ति के इस दुरुपयोग के इरादे के लिये या आत्महत्या के लिये उसे डेढ़ बरस जेल की सजा दी गई। इस सजा ने शरण का रूप ले उसे घबराहट से मुक्ति दे दी।

× × ×

जेल से छूटते समय अमला के लिये संसार फिर शून्य था परन्तु जेल में नसीमा ने उसे बहुत कुछ समझा दिया था। और जानने न जानने में उतना ही अन्तर है जितना होने और न होने में।

नसीमा पहले भी दो बार जेल काट चुकी थी। मूंडचिरे कन्चन ने अपनी जान बचाने के लिये उसे दगा दे कोकीन के मामले में जेल भिजवा दिया था। दुनिया में कहीं जगह पाने की अमला की अबोध चिन्ता का उपहास कर नसीमा ने कहा—"अरे औरत की जवानी है तो उसके हाथ टकसाल है!··· तेरी फिक्र करने वाली दुनिया है।·····कोई दिन हमने भी 'सोनागाछी' में राज किये हैं बिटिया!"

× × ×

पन्द्रह बरस बाद—

अमलादेवी के दो मकान हैं। पुलिस वाले उसका नाम ले गाली दे कहते हैं—"उस·····के चक्कर में फंसी लौंडिया का निस्तार नहीं। बीसियों लट्ठबन्द गुण्डे जिसकी मातहती में हों।"

मिस्सी से दांतों की कोर रंगे, दायें गाल में पान दबाये, सरौते से सुपारी कतरती हुई, आंख दबाकर वह कितने ही लोगों के भाग्यचक्र दायें-बायें चलाती रहती है।

पुरुष भगवान

मसूरी में यदि आपकी कोठी आम बाजार से दूर है तो बीसियों जहमतें होंगी पर एक आराम रहेगा; दर्शन करने और दर्शन देने के लिये आने वालों से आप रक्षा पा सकेंगे। लेकिन जो लोग लम्बी सैर से सेहत सुधारने की आशा करते हैं, उनसे आप वहां भी नहीं बच सकते।

दोपहर बीत चुकी थी। खिड़की से आती घाम में आराम कुर्सी पर लेटा शीपिन का नाटक The Modern Ethics (आधुनिक नैतिकता) पढ़ रहा था। अहाते में बिछी बजरी पर कदमों की आहट सुनाई दी, कुत्ता भोंका, पुकार आई—"कहाँ हो भाई ?" और फिर अपना नाम।

समझ गया, रामनाथ है। अपने सुखासन से ही उत्तर दिया"—आ जाओ !" और पृष्ठ समाप्त करने का यत्न करने लगा।

रामनाथ आ गया। समीप की कुर्सी पर बैठ, मार्ग की चढ़ाई में आया सिर का पसीना सुखाने के लिये उसने अपनी तहाकर बाँधी हुई खद्दर की नोकीली पगड़ी मेरी कुर्सी की चौड़ी बाँह पर रख दी। दोनों हाथों की अंगुलियां आपस में चटखाते हुए खिड़की की राह देवदार की टहनियों पर नजर दौड़ा उसने पूछा—"क्या हो रहा है ?"

"कुछ नहीं ऐसे ही,···सुनाओ !" पुस्तक एक ओर रख उत्तर दिया।

"यों ही चला आया···कुछ घूमा-फिरा करो···फ़ायदा क्या है पहाड़ आने का ? तुम्हारा नौकर कहां है ?···एक गिलास जल पीता। पहाड़ पर चलने से व्यायाम अच्छा हो जाता है।" रामनाथ ने नसीहत दी।

"भोला ! पानी लाओ, एक गिलास !" मैंने पुकारा।

रामनाथ सुना रहा था, कौन-कौन मसूरी आये हुये हैं, किन लोगों से वह मिल आया है, कौन जल्दी ही नीचे चले जाने वाले हैं। पांच मिनिट बीत गये। जल के लिये उसने फिर याद दिलाई। इस बार कुछ ऊंचे स्वर में जल लाने का हुक्म दोहरा कर मैं रामनाथ की बात सुनने लगा। कुछ मिनिट और बीत गये। झुंझला कर उसने कहा—"बड़ा बत्तमीज है नौकर तुम्हारा·····या सो रहा है ?"

तैश में उठा। खयाल था, पिछवाड़े बैठ कर भोला जूतों पर पालिश करते हुये सो गया होगा। जाकर देखा, काम खतम कर वह गायब है। रसोई में झांका। वहां भी वह न था।

रसोई की खिड़की के नीचे समीप की कोठी का खण्डहर है। किसी आंधी से कोठी की छत उड़ गई। वह कतई बेकार पड़ी है। लेकिन उस कोठी के बगीचे में अब भी भोला की देख-रेख में तरकारी और फलों की खेती मेरे उपयोग के लिये होती है। हमारे प्रयत्न से उत्पन्न भोजन की सामग्री में भाग पाने के लिये लंगूर भी उधर चक्कर लगाते हैं। सोचा, भोला लंगूरों को खेदने गया होगा।

खिड़की की जाली से झांका। भोला वहां था परन्तु अकेला नहीं। उसे पुकार न सका; उचित न जान पड़ा। कौतुहल था परन्तु देखते रहने में संकोच अनुभव हुआ। स्वयं जल का गिलास ले लौट आया।

"अरे···!" रामनाथ ने विस्मय से पूछा, "क्यों, नौकर क्या कर रहा है ?"

"उसे रहने दो।" मुस्कराहट न रोक सका।

"क्यों ?" रामनाथ ने प्रश्न किया।

"इस समय उसे पुकारने से शाप लगेगा।"

आधा गिलास जल पी सांस लेते हुये रामनाथ बोला—"मतलब ?"

मेरी मुस्कराहट से उस का कौतूहल और जगा। गिलास समाप्त कर उसने अपना प्रश्न दोहराया।

"देखोगे ?" मैंने पूछा, "लेकिन चुप रहना, आहट न करना···आओ !"

मैं रसोई घर की खिड़की के समीप खड़े हो अंगुली से रामनाथ को दिखाया :—गिरी हुई कोठी के पिछवाड़े पहाड़ की दीवार के साथ, जहां बड़े-बड़े पत्थरों का पुश्ता बना है और पत्थरों की सांधों में से जंगली गुलाब, केसरी नस्ट्राशियम और सुफेद हनीसकल के फूलों से लदी बेलें हवा में हिलोर रही थीं, नीचे चौड़ी चट्टान पर भोला बैठा था और उसके साथ बैठी हुई थी, फटती जवानी

से चंचल एक खूबसूरत गोरखा लड़की। लड़की सीप के बटनों से सजी काले अलपाका की वास्कट, सफेद कमीज और काले किनारे की मोटी गुलाबी रंग की धोती पहने थी। दोनों चेहरे खुशी से दमक रहे थे। रामनाथ की ओर बिना देखे मेरे मुख से निकला—"प्रकृति ने क्या सुहाग-सेज सजाई है!"

भोला बायें हाथ में लड़की का दाहिना हाथ थामे दाहिने हाथ की अंगुली से उसकी ठोढ़ी और गालों को गुदगुदाने की चेष्टा कर रहा था। वह लड़की बायें हाथ में थमी नस्ट्राशियम की एक टहनी से भोला के सिर पर मार-मार कर शरारत का दण्ड दे रही थी।

भोला ने उसका दूसरा हाथ भी पकड़ उसे खींच कर बाहों में ले लिया। बार-बार वह अपने ओंठ आगे बढ़ाता और लड़की अपना मुंह कभी दायें और कभी बायें हटा लेती। आखिर भोला को सफलता मिली। लड़की का सिर पीछे लटक गया और उसने बांहें भोला के गले में डाल दीं!

"अब आ जाओ!" रामनाथ का हाथ दबा कर मैंने कहा।

गम्भीर क्रुद्ध दृष्टि से मेरी ओर देख उसने पूछा—"यह औरत कौन है?"

"बुड्ढे गोरखा चौकीदार की नयी जवान बीवी।" उत्तर दिया।

"यह क्या बदतमीजी है!" मुझे डांटते हुये उसने कहा, "शरम नहीं आती?"

"कमरे में आ जाओ!" धीमे स्वर में उत्तर दिया।

"मेरा नौकर होता, खाल खींच लेता!" रामनाथ झुंझलाया, "देख कर खुश हो!"

"क्यों?" कुछ हतप्रतिभ होकर पूछा।

"क्यों!" आश्चर्य और क्रोध भरी दृष्टि से मुझे सिर से पैर तक देखते हुये रामनाथ ने दुहराया।

"हां क्यों?" मैंने आग्रह किया, "आखिर क्या अत्याचार हो गया?"

"अत्याचार या अनाचार और क्या होगा?" रामनाथ क्रोध में थुथला गया।

"हो सकता है परन्तु मैं, तुम दखल देने वाले कौन हैं?……उनके मन की चाह है और वह औरत भी सन्तुष्ट है। और शायद यह सन्तोष उस औरत को दूसरी किसी जगह नहीं मिल सकता। उन्हें अवसर मिला है तो कोई दखल क्यों दे?…किसी को क्या अधिकार है?" सहमते हुये मैंने उत्तर दिया।

"अधिकार!…" क्रोध में थुथलाकर रामनाथ ने प्रश्न किया।

"हां अधिकार !" मैंने साहस किया, "पन्द्रह रुपया माहवार में मैंने क्या उसका जीवन खरीद लिया है ? भोला ऐसा क्या कर रहा है जो दूसरे नहीं करते ? किस बात के लिये उसकी खाल खींच ली जाय ? केवल अवसर का सवाल है।"

"और वह तुम्हारा बूढ़ा गोरखा चौकीदार ?" आवेश वश में करने के लिये अपने बन्द गले के कोट में बटन बन्द करते हुये रामनाथ बोला, "देख ले तो खुखरी से सिर काट लेगा या नहीं ?"

"काटने का यत्न करेगा जरूर। वैसे ही जैसे आजादी के लिये जान की बाजी लगा देने वाले गुलाम को शोषक मालिक काले पानी और फांसी की सजा देता है। परन्तु उस बूढ़े को अधिकार क्या है ? क्या उसका ही सन्तोष सब कुछ है, इस औरत का कुछ नहीं ? क्या उस लड़की को वह बूढ़ा यह तृप्ति दे सकता है ?···"

विस्मय से फैली आंखों से रामनाथ मेरी ओर घूर रहा था परन्तु मैं कहता गया—"क्या सिर काटे जाने के खतरे को वह लड़की नहीं जानती ? उस खतरे और जोखिम को जानकर, सिर हथेली पर रखकर वे दोनों जीवन की प्रेरणा से मिले हैं। उनका यह स्वच्छन्द मिलन कितना स्वाभाविक और पवित्र·····" अपने शब्दों से मैं स्वयम् ही हतप्रतिभ हो गया। मन में ऐसी बात सोचने पर भी समाज में सम्मान खो देने के विचार से वह बात कभी होठों पर न आयी थी। मुख से बात निकल जाने पर निबाहने के लिये कहा, "और तुम उस जाहिल चौकीदार की तरह उसकी खाल खींच लेना चाहते हो ?"

"जाहिल····· वह उसकी ब्याहता औरत नहीं ?" मुझे निरुत्तर कर देने के लिये रामनाथ ने पूछा।

"ब्याह क्या ?" मैं निरुत्तर न हुआ।

"ब्याह क्या !" उसने दोहराया।

"स्त्री पर पुरुष का अधिकार ?" मैंने पूछा।

"हां अधिकार, धर्म और समाज का अधिकार !" अपनी मुट्ठी ऊपर उठाकर रामनाथ बोला।

"वैसा ही अधिकार जैसा दास के जीवन पर स्वामी को होता है ?"

रामनाथ झुंझलाहट में फिर थुथला गया—"पुरुष आयु भर सब संकट झेल कर स्त्री का पालन नहीं करता ? क्या इसलिये कि वह उसे धोखा दे ?"

रामनाथ के नेत्रों में विजय चमक उठी।

इस पर भी मैं बोला—

"अच्छा, यदि मोटरों के अड्डे पर घुटनों के बल रेंग कर भीख मांगने वाली बुढ़िया तुम्हें एक लाख रुपये रोज की मजदूरी दे पति की ड्यूटी पर नौकर रखना चाहे···यदि उसकी दया बिना तुम्हें भोजन-वस्त्र की सुविधा न रहे?"

"तुम्हारा दिमाग फिर गया है!" वितृष्णा से उसने उत्तर दिया, "ऐसा कभी हुआ है?"

पीठ फिराकर वह चला गया।

और मैं सोचता रहा—सच है, शायद ऐसा कभी नहीं हुआ। और हे भगवान्, ऐसा कभी न हो।·····शायद ऐसा होगा भी नहीं।·····भगवान के रहते ऐसा अत्याचार न होगा क्योंकि वे स्वयम् पुरुष हैं।

देवी का वरदान

कम्पोज़ीटर की तनखाह ही कितनी, बीस न हुये पच्चीस। छुट्टी के समय भी काम (overtime) करके तीन-चार और कभी पांच और बन जाते। तनखाह कम होने पर भी कम्पोज़ीटर का काम आसान नहीं होता। अक्षर-अक्षर जोड़ पोथी तैयार कर देना सहल काम नहीं।

जाल बुनती मकड़ी की तरह फुर्ती से हाथ चलाकर सामने फैले पांच सौ तेरह खानों में से चींटी-चींटी जैसे अक्षर चुनकर शब्द बनाना, शब्दों से वाक्य और वाक्यों से पंक्तियां। आंखें पथरा जाती हैं, कमर टेढ़ी हो जाती है और दिमाग बिलकुल कुन्द। अपने हाथ से बने आत्मज्ञान और भौतिक ज्ञान के ग्रन्थों के विषय में वह कुछ भी नहीं जान पाता। जैसे मधुमक्खी अपने बनाये शहद की महिमा नहीं जानती। पुस्तक पढ़ने वाला भी कम्पोज़ीटर को कभी जान नहीं पाता।

पुस्तक बना सकने की यह विद्या जानकर भी रग्घू महाराज पुस्तक बनाने का मुनाफा न कमा पाये। कारण यह कि छापे के अक्षर टाइप फाउण्डरी से खरीदने के लिये हज़ार से अधिक रुपया दरकार होता है। और अक्षरों के रूप में तैयार पुस्तक को कागज़ पर छापने के लिये हज़ारों रुपये की मशीन की ज़रूरत होती है। कागज़ के लिये भी सैकड़ों चाहिये। फलतः चातुर्य और महाविद्याओं से पूर्ण अनेक ग्रन्थों और पुस्तकों के निर्माण में परिश्रम करके भी रग्घू महाराज जो थे वही रहे।

युद्ध का संकट जैसा दूसरे लोगों पर पड़ा वैसे ही रग्घू महाराज पर भी। युद्ध के महासंकट के अगल-बगल इस संकट से कुछ त्राण के उपाय भी पैदा

हो गये। प्रकृति में प्रायः ऐसा होता है :—जहां बिच्छू-बूटी उपजती है उसके समीप ही इस बूटी के छू जाने से पैदा होने वाली पीड़ा को दूर करने वाली पत्ती भी उगी रहती है और कुछ लोगों का विश्वास है कि विषधर सर्प के सिर की मणि ही सर्प के विष का उपाय भी कर देती है।

रग्घू महराज पर युद्ध का संकट तो आया परन्तु उस विपदा से त्राण के उपाय उनके बस के न थे। गोमती प्रेस के उनके अनेक साथी २०) की कम्पोज़ीटरी छोड़ गन फैक्टरी में चालीस-पैंतालीस की मज़दूरी करने लगे। कुछ ने कम्पोज़ीटर की तनखाह में पेट भरते न देखा तो फौज के लिये तरकारी सुखाने के कारखाने में जा सवा-डेढ़ रोजाना की पगार करने लगे।

ब्राह्मण की सन्तान होकर रग्घू महराज के लिये यह सब ओछे कर्म सम्भव न थे। बीस बिसवे मिसिर ठहरे। गन फैक्टरी में दिन भर जाने किस-किस जात का साथ हो ?·····प्यास लगे कभी पानी का घूंट ही निगलना पड़े तो वहां कैसे होता ?·····जो दुख-संकट बदा है उसे तो झेल ही रहे थे; जाति और धर्म गंवाकर परलोक भी बिगाड़ लेते ! मजदूरी चाहे चवन्नी की हो चाहे चालीस रुपये की, है मजदूरी ही। शूद्र का कर्म ! काशी महराज की सन्तान हो, कन्धे पर बरमसूत (जनेऊ) पहने रग्घू मजदूरी करने कैसे जाते ? प्रेस के काम में तलब कम भले ही हो परन्तु काम तो इज्जत का है। सरस्वती की पूजा ! ब्राह्मण को वही शोभा देता है। आदमी अपने धर्म-कर्म से रहे, कर्म का फल देने वाले भगवान हैं।

रग्घू महराज का जन्मपत्री का नाम रघुनाथ मिश्र था। घर के लोगों ने छुटपन में लाड से या सहूलियत से रग्घू पुकारा। आयु तो बढ़ी, शरीर भी बढ़ा परन्तु समाज अथवा व्यक्तियों की दृष्टि में रग्घू के व्यक्तित्व का आदर न बढ़ा। बाल खिचड़ी हो जाने पर भी वे रग्घू ही रहे या जाति के प्रति आदर के विचार से महराज कह कर पुकार लिये जाते। जन्म की पवित्रता के कारण या उपयोग के विचार से उनका आदर था। प्रेस में कभी किसी गाहक के संयोगवश जल मांग लेने पर रग्घू महराज की ही पुकार होती। वे हाथ धो, प्रेस के अहाते के कुयें से जल की चमचमाती लुटिया हाथ पर रख गर्व से दफ्तर में उपस्थित होते। कौन है ऐसा जो उनके हाथ का जल पीने से इनकार कर सके ?

सुनते हैं, नवाब वाजिदअलीशाह के एक सूबेदार असमतअली खान प्रौढ़

अवस्था तक सन्तानहीन रह दुखी थे। रग्घू महराज के पुरखा पंडित काशीनाथ मिश्र के मंत्र-बल से सूबेदार साहब को पुत्र प्राप्त हुआ। इससे नवाब के दरबार तक काशीनाथ मिश्र की पहुंच होने लगी। दुर्भाग्य से रक्षा के लिये जहां नवाब मौलानाओं और पीरों के दिये गण्डे-ताबीज व्यवहार में लाते थे वहां पण्डित काशीनाथ मिश्र भी उनके लिये महामृत्युञ्जय मंत्र का जप कर कवच तैयार करते थे। मिश्र जी को सल्तनत की ओर से जागीर मिली थी और गोल दरवाजे के समीप कहीं उनकी हवेली भी थी। हवेली इतिहास के अथाह गर्भ में छिप गई।

चौक में रहने वाले मिश्र वंश के ब्राह्मण स्थान की खोज में शनैः-शनैः नयी बस्तियों की ओर बढ़ने लगे। रग्घू महराज के पिता वजीरगंज में रहते थे। उनका जैसा-तैसा अपना कच्चा मकान था। रग्घू महराज के एक बड़े भाई बिन्दू महाराज अब भी वहीं रहते हैं। पुरोहिती और ज्योतिष का वंशागत पेशा वे अब भी संभाले हैं। भगवान की दया से मिश्र परिवार की फूलती-फलती संतति के लिये उस संकुचित घरौंदे में पर्याप्त स्थान न रहा। रग्घू महराज के तीन भाई अपनी स्त्री और सन्तान लेकर जीविका और स्थान की खोज में जाने कहां-कहां चले गये। रग्घू महराज आकर टिके अहिय्यागंज की एक गली में।

गली कच्ची थी और रग्घू महराज के सौभाग्य से वह कभी पक्की न बन पाई। इसी से चवन्नी माहवार पर ली हुई उनकी कोठरी का किराया भी पच्चीस बरस में दो रुपये माहवार से अधिक न बढ़ सका।

रग्घू महराज के पुरखों से कथा चली आती है कि नवाब वाजिदअली के सूबेदार अशमतअली खाँ का श्राप पं० काशीनाथ मिश्र ने तोड़ दिया इस से देवी उन से क्रुद्ध हो गई। निस्सन्तति का श्राप उन्हीं पर आ पड़ा। एक लड़का उन के था और फिर कोई सन्तान न हुई और लड़के के युवा हो जाने पर भी वह निस्सन्तान रहा। काशीनाथ महाराज ने देवी की अराधना की। देवी ने साक्षात दर्शन दे आज्ञा दी—"तूने म्लेच्छ का शाप तोड़ा है! तुझ से एक-एक सन्तान का मूल्य सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन लूंगी!"

काशी महराज ने देवी की आज्ञा पूर्ण की। उनके पोता उत्पन्न हुआ। तब से वंश-परम्परा की रक्षा के लिये पं० काशीनाथ मिश्र के वंश में प्रत्येक सन्तान के जन्म पर सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का नियम स्थिर हुआ।

इस नियम के फल से काशीनाथ का वंश खूब समृद्ध हुआ। देवी के आशीर्वाद से एक-एक पुत्र के दस-दस बारह-बारह सन्तान हुये।

समय के परिवर्तन से सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का रूप बदल गया। वह सन्तान जन्म के समय अग्नि में सौ आहुति देने और ब्राह्मणों को सौ कौर खिलाने के रूप में परिणित हो गया। समय और बदला और काशीनाथ के वंश में प्रत्येक सन्तान के जन्म के समय भविष्य में माता की बांझपन से रक्षा करने के लिये सौ यज्ञ और ब्राह्मण भोजन अग्नि में एक सौ दाने जौ, तिल डाल कर सौ दाना चावल का गौरैया को खिलाने का टोना मात्र रह गया। अहिल्यागंज की कच्ची गली में रघू महराज के घर प्रचीन गौरव का यही रूप शेष था।

परन्तु देवता तो द्रव्य के भूखे नहीं, भावना के ही भूखे होते हैं। रघू महराज के घर में भावना के इस अत्यन्त संक्षिप्त रूप का प्रभाव ही यथेष्ट था। घर में दारिद्रय होने पर भी भगवान की दया थी। स्थान और भोजन वस्त्र पर्याप्त न मिलने पर भी मंगल-सूचक ढोलक की ताल उस घरौंदे से प्रायः सुनाई देती ही रहती। कभी दूसरे वर्ष और कभी बरस भर बीतते ही पास-पड़ोस से अहीरन, काछिन और नाउन उनके घर घिर आतीं और कौतुकपूर्ण लज्जा से मुख के सामने आंचल कर चंचल नेत्रों से उन्हें सम्बोधन करतीं—"हाय भैय्या, भौजी के लिये हरीरा-वरीरा कुछ नहीं लाओगे क्या ?"

सन्तान जन्म के उस आल्हाद और उत्सव के क्षण में रघू महराज श्रम और भूख से अकाल में ढीले पड़ गये कन्धों में गर्दन लटकाये, आंखें छिपाते, हाथ में लाल अंगौछा लिये, गली में बहते कीच की धार के दोनों ओर कदम रखते बड़बड़ाते चले जाते—"ससुर जाने का परछावां पड़े से ही पेट हो जाता है·····!"

दसवीं सन्तान के समय तो क्षोभ के आवेश में लोक-लाज भी डूब गई। बूढ़ी अहीरन चुनिया ने पोपले मुंह से हरीरे की दिल्लगी की तो महराज उबल पड़े—"क्या कहत हो चुनिया तुमऊ, ससुर कुतिया सी चैत के चैत ब्याये जात है, रोज-रोज हरीरा धरा है ?..." यहां पहलों को ही टुकड़ा नहीं जुड़ रहा था परन्तु कुल की रीति से बांझपन का निवारक सौ यज्ञ और सौ ब्राह्मण भोजन का टोना किया ही गया।

महराज के घर सन्तान होने का समाचार जैसे-तैसे प्रेस भी पहुंच जाता।

बधाइयों की बौछार होने लगती। महराज कभी झेंपते कभी झल्लाते। लोग पूछते—"अरे महराज, बताओ तो ऐसा क्या खाते हो ?" और मसखरे बोल उठते, "और बड़े-बड़े कुश्ते मालूम हैं महराज को !" रग्घू झुंझलाकर गाली पर आ जाते।

बात घूम-फिर कर महराजिन के कान तक पहुंच जाती और वे अपने अपराध के लिये बेबस चुप रह जातीं। परन्तु भगवान के दिये को कौन टाल सकता है। ग्यारहवीं सन्तान भी महराजिन की कोख से हुई ही और देवी का टोना फिर भी किया गया। कुल की रीति थी।

देव की दया से महराज को ग्यारह में आठ सन्तान जीवित थीं, पांच लड़के और तीन लड़कियां। महराज ने जैसे-तैसे दो लड़कियां व्याह दी थीं परन्तु बड़ी लड़की विधवा हो ससुराल के सन्ताप से गोद में बरस भर की लड़की लिये रोती हुई बाप के यहां लौट आई। दोनों बड़े लड़कों के ब्याह भी हो गये थे। स्वयम् महराज को इतनी जल्दी न थी परन्तु इतने ऊंचे कुल में अपनी कन्या दे पुण्य कमाने वाले सदविप्रों की कमी न थी। इसलिये बहुत ठहराते-थमाते भी दोनों बड़े लड़कों की बहुएं आ चुकी थीं और भगवान की दया और देवी के टोने के बल से महराजिन के ग्यारहवीं सन्तान से पहले ही उन्होंने पोते का मुख देखा।

सन् १९४४ से भयंकर अन्न, वस्त्र और स्थान का दुष्काल भारत ने कभी नहीं देखा। महराज के घर बरस भर से ज्वार-बाजरा ही आ रहा था और वह भी एक रुपये का अंगौछे में बंधकर चार सेर के भाव आता। वस्त्र का यह हाल कि छः पैसे गज की छींट रुपये गज पा जाते तो बजाज को आसीस देते। शरीर की खाल में लगे खोंचे से अधिक पीड़ा देता था कपड़े में लग गया खोंचा। मजबूर हो महराज चौथड़े वाले के यहां से टुकड़े चुन-चुन कर लाये कि किसी तरह औरतों की कमर पर कपड़ा रहे।

घर नाम के उस घरौंदे में एक भीतर और एक बाहर कोठरी थी। उसी में सब परिवार ऐसे समाया रहता जैसे खूब फूला पौधा गमले में समाया रहता है—जड़ गमले के भीतर दबी रहती है और शाखायें और पत्ते आकाश में फैले रहते हैं। वैसे ही परिवार का सम्बन्ध घर की कोठरियों से था वरना यों दिन में बच्चे जाने कहां बिखरे रहते। स्त्रियां गली के कोने पर नीम के नीचे या दीवारों की छांव में समय बिता देतीं। गरमी की रात में सब लोग

टाट-बोरी का टुकड़ा ले गली में बिछ जाते। अलबत्ता बरसात और माघ-पूस के जाड़े में उन कोठरियों में बरसात में फूट आये कीड़ों का दृश्य बन जाता। अंधेरे में दिखाई कुछ देता न था परन्तु अवस्था वही होती जैसे बरसात में धरती से गिजाइयों के फूट आने पर होती है; किसी की कमर पर किसी का सर और किसी के पेट पर किसी के पांव। बच्चों में मारपीट हो जाती। दोनों बहुएं गोद के बच्चों को चिपकाये पास की दीवार की ओट में चिपक कर सो जातीं। इस पर भी भगवान् जब देते हैं तो छप्पर फाड़ कर देते हैं।

पूस में छोटी बहू की गोद फिर हरी हो गई। मंगल सूचक ढोलक बजी। महाराज किसी तरह ढीले कन्धों में गरदन लटका कर पोते के जन्म के समय भी देवी का टोना करने बैठे। उन के हाथ शिथिल थे और मन बुझा हुआ परन्तु पोते के जन्म का सगुन कैसे न करते। महाराजिन बिखरे जर्जर शरीर को फटी धोती में समेटे बैठी सतर्कता से देवी के टोने का पूर्ण किया जाना देख रही थी। आठ-दस आने का बायना भी बांटा। महाराज जैसे अपने शरीर का मांस चुटकियों से तोड़-तोड़ रहे हों।

रग्घू महाराज को आठ रुपये मंहगाई भत्ता मिलने लगा था। पर उस से क्या होता? बारह प्राणियों के पेट तैंतीस रुपये में क्या भरते, जब ज्वार-बाजरा चार सेर का मिल रहा हो? यों राशन कार्ड बनाने वाले मुंशी जी ने ब्राह्मण पर दया कर सात की जगह कार्ड में दस बालिग लिख लिये थे। परन्तु उतना गल्ला खरीदने को रकम कहाँ थी? सो महराज अपने कार्ड पर प्रेस के मालिक बाबू जी की गैय्या के लिए अन्न खरीद देते। आदमी जब तक जिन्दा है शरीर के कुछ भाग पर कपड़ा भी चाहिये ही। आखिर महाराज ने प्रेस में चिरौरी कर बड़े लड़के को प्रेस में अठारह रुपये पर डिस्ट्रीब्यूटर करा लिया। महाराज ब्रह्म तेज से शरीर के कष्टों को झेले जा रहे थे परन्तु छोटा लड़का साधो कल-युगी सन्तान निकला। एक दिन घर से लापता हो गया। जाने कहां चला गया? अहमदाबाद की किसी मिल में कोरी का काम करने या फौज में भरती हो गया।

महाराज कभी सोचते, जाने लड़के का क्या होगा? यहां जैसे-जैसे दिन कट रहे थे परन्तु थे तो सब एक जगह। और कभी सोचते-दो हाथ-पांव भगवान के दिये हैं, किसी तरह भर लेगा। यहां क्या मुंह भरने को कम है? बड़ी बहू का खयाल आ जाता, उस का फिर पैर भारी था···एक और को राम जी भेज

रहे हैं। ऐसी चिन्ताओं से महाराज हरदम खौखियाये रहते बल्कि सारा घर ही खौखियाया रहता; जैसे लड़ाई के दिनों में मेले का अवसर आ जाने पर किसी बड़े स्टेशन पर रेल के तीसरे दर्जे के डिब्बे में हालत होती है। हर कोई दूसरों को अपना शत्रु समझ नोंचने और धकेल देने में लगा हुआ। बच्चे एक दूसरे पर, बहुयें और महाराजिन अपने बच्चों पर दाँत पीसतीं रहतीं—राम जी तुझे उठा लें! राम करे तेरे कीड़े पड़ें! ···और महाराज बिलबिला कर सभी को राम जी सौंपने को तैय्यार हो जाते।

एक दिन मुँह अंधेरे ही महराजिन ने ठेल कर जगाया—"कि नाऊन जमनी को तो बुला दो पिछवाड़े से। बहू को दरद पूरे नहीं उठ रहे हैं।" दिन चढ़ते-चढ़ते पास पड़ोस की बहुएँ और सासें घिर आईं। बड़ा लड़का झेंप के मारे खिसक गया। सब कुछ उन्हें ही करना था।

महाराज प्रेस जाने के लिये बदन पर कुर्त्ता पहन रहे थे कि महराजिन ने पुकारा—"अरे कहाँ जाते हो, तनिक ठहर जाओ। लड़का हुआ है, देवी का जग तो कर जाओ!"

महाराज का शरीर प्रायः निष्प्राण हो रहा था। "हाँ" कर वह मुंह बाये खड़े रह गये। इतने में पड़ोस से ढोलक आ गई और गाने की आवाज़ भी उठने लगी। अहीरन चुनिया ने उलझ कर कहा—"अरे आवाज से गाओ! क्या हो रहा है तुम्हारे गलों को?" पड़ोसनों के चेहरों पर प्रसन्नता थी। महराजिन का चेहरा मुर्झा रहा था।

महराजिन मुंह से गीत कहतीं जल्दी में जौं-तिल और चावल के दाने बीस-बीस की ढेरी में पांच-पांच जगह गिन रही थी और महाराज झुकी कमर पर दोनों हाथ टिकाये कुछ सोच रहे थे। निश्चय करने के प्रयत्न में उन की पीली लम्बी मूंछें जबड़ों के हिलने से हिल जातीं। वे मन में बार-बार कहे जाते थे—नहीं, बस अब और नहीं! परन्तु मुख से कुछ कहने का दम न था।

महराजिन एक कड़छुली में आग ले आई और बोली—"कर दो न देवी का जग।"

महाराज को झिझकते देख आशंका से उन्होंने पूछा—"काहे?"

"हां होता है।" देवी के प्रकोप के भय से महाराज स्वयं भी अस्थिर हो रहे थे। दुविधा में उकड़ूं बैठ गये। परन्तु हाथ जौं-तिल की ओर न बढ़े।

आशंका से महराजिन की आंखें फैल गईं—"काहे अबेर किये दे रहे हो!"

'अबेर हो रही है'—इस विचार से महराज को जैसे कुछ सहारा मिला परन्तु इनकार का साहस न था। टालने के लिये बोले, "बहू तो ठीक है, उसे देखो।" फिर सिर खुजाया, "प्रेस में देर हो रही है!"

"हां तो देवी का जग तो करो! अबेर कितनी कर दी।" चॅचियाकर कर महराजिन बोलीं।

महाराज घर से बाहर हो प्रेस की ओर चल पड़े।

महराजिन का हृदय देवी के क्रोध के भय से धक से रह गया—"हाय, क्या होगा?"

और महाराज फुर्ती से कदम बढ़ाये जा रहे थे।

पीछे से गीतों की आवाज ऊंची हो रही थी और महराजिन की पुकार सुनाई दे रही थी।

महराज चाहते थे, गीतों के स्वर से अधिक तीव्र गति से वे उस भय से भाग जायं·····किसी तरह देवी के वरदान से बच जायं।

इस टोपी को सलाम

गरमी से परेशान होकर या स्वास्थ्य के लिये पहाड़ जाने वालों से नैनीताल की रौनक नहीं होती। ऐसे लोग ओंठ भींच कर नाक से लम्बी सांस लेने की कोशिश करते, हाथ में छड़ी लिये सूनी सड़कों पर चहलकदमी करते दिखाई देंगे या अखबार, पुस्तक लिये पलंग या कुर्सी पर पड़ रहेंगे। बहुत हुआ, झील के किनारे जा बेंच पर बैठ, दूसरों का मनोविनोद देख अपना दिल बहला लेंगे।

गरमी के मौसिम में गरमी तो होती है लेकिन साहबियत के रिवाज से पहले पहाड़ कौन जाता था ? अंग्रेजों को गरमी ज्यादा सताती है इसलिये गरमी से अधिक परेशान होना साहबियत या बड़प्पन का चिन्ह हो गया है। इसके अलावा नई सभ्यता या साहबियत के विलास वहीं होंगे जहां साहब होंगे। गरमियों में साहब और बड़े आदमी दूर-दूर से सिमट कर 'हिल-स्टेशनों' (मंसूरी, नैनीताल) में इकट्ठे होते हैं और वहां साहबियत के विलास के अखाड़े बन जाते हैं। शौक रखने वाले दूर-दूर से आकर वहां जुटते हैं। बरस भर की उमंग महीने-पन्द्रह दिन में यहां आकर पूरी करते हैं। जैसे बरात में जाने के लिये या नौकरी पाने की आशा में 'इण्टरव्यू' करने जाते समय पोशाक और सामान का चुनाव किया जाता है, कभी-कभी उधार भी ले लिया जाता है, वैसे ही नैनीताल के सम्बन्ध में भी समझिये।

मुरारी नैनीताल का ऐसा ही यात्री था।

दोपहर से ही विचार था कि सांझ को अपने अतिथि मित्र खत्री के साथ 'कैपिटल' में सिनेमा देखने जायगा। इसलिये समय से शेव कर उसने अचकन, चूड़ीदार पायजामा और तीखी नोक की गांधी टोपी पहनी। उसके पुष्ट, चौड़े

सीने पर अचकन सूट से कहीं अधिक जंचती भी थी। तल्लीताल से मल्लीताल को रवाना हुये। खत्री भी खूब जंच रहा था।

बाज़ार की उतराई उतर, झील के सामने डाकखाने के पास पहुंचे तो आगे रिक्शाओं ने राह रोक रखी थी। उस जगह प्रायः ऐसा ही जमघट हो जाता है। दाहिनी ओर ऊपर के बंगलों और आर० ए० एफ० के साहब लोग क्लब से उतरते हैं। समीप ही नीचे से आने वाली मोटरों का अड्डा है। और भी कई सड़कें वहीं आकर माल रोड में मिलती हैं। जहां साहब लोगों का, विशेष कर अमेरिकन और गोरे लोगों का झुण्ड रिक्शेवालों ने देखा, अपने-अपने रिक्शे लेकर झपटते हैं, जैसे गुड़ की डली पर मक्खियां टूट पड़ती हैं। रिक्शे भिड़ जाते हैं और राह बन्द हो जाती है।

ऐसा ही हाल मुरारी और खत्री ने सामने देखा। और देखा—बीच में तीन गोरे घिरे थे और पांच-छः रिक्शे आगे-पीछे आपस में भिड़े थे। रिक्शा कुली गोरों का सामान खींच-खींच कर चिल्ला रहे थे—"हजूर इधर! साहब इधर! हमने पेले कहा! हजूर हमने पेले! साब, ये है रिक्शा! इसमें रखो!" जैसे कुत्तों का झुण्ड किसी हड्डी पर टूट पड़े, हर एक ले भागने के यत्न में और दूसरे उससे झपट लेने की कोशिश में! सभी कुली साहबों की सेवा के लिये लालायित आपस में झगड़ रहे थे।

यों खसोटे जाने से एक गोरा बौखला उठा। वह कुलियों को थप्पड़, घूंसे मार कर परे हटाने की कोशिश करने लगा। फिर जैसे किसी गधे या भैंसे को हाथ से चोट देना व्यर्थ मालूम होता है, गोरे ने अपने भारी फौजी बूट से कुलियों को मार कर पीछे हटाने की कोशिश आरम्भ की परन्तु उलझे हुये रिक्शे तुरन्त तितर-बितर कैसे हो जाते? और साहब का क्रोध बढ़ता जाने के कारण उसके हाथ-पांव तेजी से चलते जा रहे थे।

साहब की सेवा के लिये आतुर कुली एक हाथ से सिर बचाने की कोशिश करते, पीठ पर मार खाते हुये भागने की राह ढूंढ़ रहे थे परन्तु उलझ जाने के कारण निकल नहीं पा रहे थे।

देख कर मुरारी का खून सिर में चढ़ गया। खत्री को सम्बोधन कर उसने अंग्रेजी में कहा—"यह क्या जुल्म है? गोरे हिन्दुस्तानियों को ऐसे पीट रहे हैं .....यही कांग्रेस गवर्नमेण्ट है?"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना वह कुलियों के झुण्ड में घुस बौखलाये हुये

गोरे के सामने जा खड़ा हुआ। ऊंचे स्वर में अंग्रेज़ी में बोला—"किसी को मारने का हक किसी को नहीं है। तुम जाकर पुलिस में रिपोर्ट कर सकते हो!"

खत्री भी उसके साथ-साथ था।

गोरे के हाथ-पांव रुक गये। उसने मुरारी और खत्री को सिर से पांव तक जांचा और फिर अपनी सफाई देने के लिये उंगलियां नचा-नचा कर गोराशाही अंग्रेजी में बहुत कुछ कह गया। उसके साथी गोरे भी बोलने लगे।

बी० ए० तक अंग्रेजी पढ़ने के बावजूद उस अंग्रेज़ का कुछ भी अर्थ मुरारी की समझ में न आया। उसने फिर किसी को मारने-पीटने के अधिकार और पुलिस से शिकायत करने के सम्बन्ध में अपनी बात दोहरायी। खत्री ने भी वही कहा। गोरे एक ओर हट गये और फिर 'रिक्शा-रिक्शा' पुकारने लगे। रिक्शे तुरन्त आ गये और शायद वही कुली सबसे पहले आये जिन्होंने थप्पड़, घूंसे और जूते खाये थे।

गोरे तो रिक्शों में बैठकर चले गये परन्तु मुरारी के तन-मन में आग लग गई। झील के साथ-साथ चलते हुये उसने पुलिस को गाली देकर कहा—"यह ·····इन अपने बाप गोरों से ऐसा डरते हैं कि कभी कुछ न कहेंगे।"

"कहेंगे क्या?" खत्री ने उत्तर दिया, "पुलिस वाले अंग्रेज़ सरकार के नौकर हैं कि हिन्दुस्तानियों के? इन्हें इन्साफ से क्या मतलब?"

ग्लानि के स्वर में मुरारी बोला—"यह साले रिक्शे वाले खुद जानवर हैं। इनमें ज़रा भी इन्सानियत हो तो गोरों को कभी रिक्शा पर बैठायें ही···?"

"रिक्शे वाले क्या!" खत्री ने टोक दिया, "अरे, जहां देखो यही हाल हैं। कहीं किसी होटल में जाकर देख लो! ये हिन्दुस्तानी बैरे बड़े से बड़े हिन्दुस्तानियों को छोड़कर टुच्चे-टुच्चे गोरों का खयाल करेंगे! उन्हें मतलब रहता है टिप (इनाम) से। हिन्दुस्तानी चाहे ज्यादा भी दें लेकिन उनके दिमाग में तो साहब की खुशामद इतनी भर गई है कि कोई क्या करे?"

मुरारी ने लम्बी सांस लेकर कहा—"अरे, यही न रहे तो स्वराज्य ही न मिल जाय। असहयोग का मतलब और है क्या? लेकिन हो भी तो!"

"हो कैसे?" खत्री ने कहा, "अंग्रेज़ों ने सबको अलग-अलग खरीद रखा है। इसी देश के पैसे से इस देश के आदमियों को खरीद रखा है। एक दूसरे का गला काटकर अंग्रेज़ों की जूती चाटते हैं कि मैं बड़ा बन जाऊं। हिन्दुस्तानियत के खयाल से कोई सोचता ही नहीं?"

झील की हिलोरें लेती सतह पर दृष्टि दौड़ाते हुये, मन के क्रोध से होंठ काट कर मुरारी बोला—"सब को पेट की पड़ी है। ऐसे कहीं स्वराज्य मिलता है ? पहले होना चाहिये राष्ट्रीयता का ख्याल !"

दोनों मित्र राष्ट्रीयता के भाव की आवश्यकता पर अंग्रेज़ी में बहस करते चले जा रहे थे। अपनी भाषा में ऐसे शब्दों के व्यवहार का अभ्यास नहीं। ऐसी बातें प्रायः अंग्रेजी के अखबारों और पुस्तकों में ही रहती हैं। हिन्दुस्तानी में ऐसे विचार प्रकट करने से बात में कुछ जोर नहीं आता।

आगे बढ़े तो याट-क्लब की इमारत आ गयी।

खत्री ने कहा—"सुनते हैं, इस क्लब का मेम्बर कोई हिन्दुस्तानी नहीं बन सकता। क्या बदतमीजी है ?"

मुरारी ने उत्तर दिया—"अरे भाई, सुनते हैं, कोई जमाना था, जब इस नैनीताल में हिन्दुस्तानियों को इस माल रोड पर चलने की इजाज़त नहीं थी। हिन्दुस्तानी निचली सड़क पर जानवरों के साथ चलते थे। अब हिन्दुस्तानी मिनिस्टरों की मोटरें इस सड़क पर जाती देख अंग्रेजों के दिल पर सांप लोट जाता होगा। कांग्रेस गवर्नमेण्ट को चाहिये कि इसके सामने एक ऐसा क्लब बनाये जिसमें अंग्रेजों को घुसने की इजाज़त न हो।"

इस प्रकार की बातों से दोनों के मन कुछ ऐसे खिन्न हो गये कि सिनेमा जाने की इच्छा न रही। मुरारी की बांहें अभी फड़क रही थीं। उसने सुझाया—"चलकर कैपिटल के रेस्तरां में अंग्रेज़ों के मुकाबले में बैठें—यह क्या कि जितनी बढ़िया जगहें हैं, सब पर सालों ने कब्जा कर रखा है ! देखें किसके कलेजे में दम है ? रणवीर और निगम को बुला लें। आज जो होना है हो जाय ! देखा जायगा।"

× × ×

मुरारी और खत्री दोनों ही मारते खां थे। रणवीर और निगम उनसे भी दो कदम आगे थे। चारों मित्र एक साथ कैपिटल में जगह घेर कर जा बैठे। पहले चाय मंगाई और उसके बाद कुछ दूसरी चीजें। कोई अंग्रेज़ आता तो उसकी ओर घूर कर चुनौती की दृष्टि से देखते। किसी ने उनकी दृष्टि की परवाह न की। किसी ने देखा तो जान-पहचान समझ, मुस्कराकर गुड ईवनिंग

कर सज्जनता प्रकट कर दी।

बाहर कुछ बूंदीबांदी होने लगी थी। इससे यों भी बैठे रहे। दो घण्टे हो गये। मन का आवेश कुछ हल्का हुआ। खत्री ने कहा—"अब आये हैं तो सिनेमा का दूसरा शो देखकर ही लौटेंगे।"

निचली मंजिल में ही सिनेमा है। सब लोग गये और एक साथ बैठे। सिनेमा खत्म हो ही रहा था कि खत्री ने अपने साथियों को उठ चलने का संकेत किया—भीड़ के साथ निकलने पर रिक्शे नहीं मिलेंगे। सर्दी कड़ाके की पड़ रही थी।

सिनेमा के सामने पुलिस के हवलदार ने एक ओर रिक्शे और दूसरी ओर डांडियां लाइनों में लगवा दी थीं कि आपस में उलझें नहीं। पहले दो रिक्शों के समीप जा चारों मित्रों ने बैठना चाहा। इतने में खेल खत्म हो गया।

दोनों ही रिक्शों के कुली उन्हें ले जाने को तैयार न थे। मुरारी ने धमकाया—"चलना होगा! चलेगा कैसे नहीं?"

"हमारा रिक्शा लगा है, हजूर यह रिक्शा रिजर्व है!"

मुरारी ने फिर धमकाया—"नहीं, चलना होगा! उठाओ रिक्शा!" वह रिक्शे पर बैठने को हुआ।

कुली ने फिर एतराज किया—"नहीं, साहब, हम नहीं जायगा। हमारा रिक्शा गोरा साहब का रिजब है।"

मुरारी का क्रोध सीमा लांघ गया। गाली देकर उसने कहा—"चलता है कि नहीं? तेरे तीन फुल्ली वाले गोरे की ऐसी-तैसी!"

रणवीर का हाथ चल गया। उसने एतराज करने वाले कुली को दो थप्पड़ लगा कमर में एक लात जमाई। मुरारी ने दूसरे कुली को दो चपत दिये। साहब लोग भी चले आ रहे थे और रिक्शे वाले उनके सामने अपने रिक्शे जबरदस्ती किये दे रहे थे। अंग्रेजों के सम्मुख अपनी यह उपेक्षा और अपमान उनके लिये असह्य था। चारों आदमी दोनों रिक्शों में दो-दो करके जबरदस्ती बैठ गये। दोनों रिक्शों के कुली असन्तोष से बड़बड़ाते हुये मार के डर से अपने रिक्शे ले सबसे पहले दौड़ पड़े।

मल्लीताल से तल्लीताल पहुंच, बाजार की चढ़ाई चढ़, रिक्शा मुरारी के मकान पर पहुंचा। गोरे साहबों के सामने मान-प्रतिष्ठा-सहित सबसे पहले रिक्शा लेकर चले आने से मुरारी का मन संतुष्ट था। एक रुपया रिक्शे का

मुनासिब किराया उसने दिया और दो रुपये और देकर कुलियों से कहा—"यह लो इनाम ! समझे ! अब अंग्रेज साहब को अपने रिक्शे पर मत चढ़ाना। हमेशा हिन्दुस्तानी साहब को रिक्शे पर चढ़ाओ। समझे ! अब अंग्रेज का राज नहीं है। कांग्रेस का राज है। समझे ! अब अंग्रेज की टोपी को सलाम मत करना !"

फिर अपनी टोपी की ओर उँगली से संकेत कर उसने कहा—"अब इस टोपी को सलाम करना। समझे !"

तीन फुल्ली वाले साहब की सवारी न मिल सकने का गिला कुलियों के मन में न रहा। बिजली के लैम्प की रोशनी में उस के माथे पर पसीने की बूंदें और आंखों में प्रसन्नता चमक रही थी। हांथ-जोड़, दांत निकाल कुलियों ने उत्तर दिया—"बात ठीक है, साब ! हमारा तो ये भी माई-बाप है वो भी माई-बाप है ! हजूर हम तो कुली आदमी हैं।

मकान का तंग जीना चढ़ने से पहले मुरारी ने खत्री के कन्धे पर हाथ रख उत्साह से कहा—"भाई अपना राज अपना ही होता है। देखा, कितना फर्क पड़ गया कांग्रेस सरकार हो जाने से !"

सत्य का मूल्य

कौशम के समीप यमुना के पूर्वी तट पर दिनांक की पैतृक भूमि था। भूमि परिवार के पालन के लिये पर्याप्त थी। हल, बैलों की जोड़ी, दो गाय और परिश्रम द्वारा भूमि से अन्न उत्पन्न करने के सभी साधन थे। भूमि की उपज का पंचम अंश भूमि कर के रूप में ज्येष्ठक को दे उस का और स्त्री-पुत्रों का निर्वाह दूसरे कृषकों की भांति हो जाता था परन्तु वह सन्तुष्ट न था।

दिनांक के मन में तृष्णा थी। भोग के अधिक साधन संचय कर अधिक सम्पन्न और सुखी बनने का स्वप्न उस के मन में समाया रहता। धन संचय कर अधिक भूमि मोल ले वह दूसरों से खेती कराने वाला भूमिपति बनना चाहता था। मिट्टी की दीवारों पर फूस से छाये अपने छप्पर के स्थान में वह एक बाग में पक्का प्रासाद बनाना चाहता था। अपने ग्राम के जुलाहे द्वारा बुने मोटे वस्त्रों के स्थान पर वह मगध, कौशल, विदिशा और कलिंग के रेशमी वस्त्र पहनना चाहता था। वह चाहता था दासियां उस के शरीर पर चन्दन का लेप कर सिंहल के मोतियों की शीतल मालायें उस के गले में पहनायें, चन्दन के पंखे से वायु करें। उसके केशों में अनेक ऋतुओं के अनुकूल सुगन्ध लगाई जाय। सवारी के लिए रथ हो; रथ सुन्दर रंगीन वस्त्रों से ढका हो। रथ के सुन्दर बैलों के सींग तेल से चिकने और काले हों। बैलों की पीठ पर कामदार झूलें पड़ी हों। सुख सम्पति के वे सभी साधन जो उस विदिशा नगरी में अपनी कृषि का अन्न बेचने के लिए जाने पर देखे थे और जिन्हें पूर्व जाने वाले राजपथ पर महाश्रेष्ठियों के सार्थों में देखा था, उस की महत्वाकांक्षा बन उस की कल्पना में समाए थे।

इन साधनों को प्राप्त करने के लिये दिनांक ग्रीष्म, वर्षा और हेमंत

ऋतुओं में सूर्योदय से सूर्यास्त तक निरंतर परिश्रम करता रहता। शरीर का कष्ट आशा की उमंग में अनुभव न होता। सम्पत्ति के विस्तार के लिये वह कुछ धन बटोर पाता कि भाग्य से वर्षा ऋतु में तटों तक भरी गंगा में सैकड़ों योजन दूर होने वाली वर्षा का जल और बह आता। गंगा अपने तटों की मर्यादा उल्लंघन कर जाती। बाढ़ में दिनांक के छप्पर-छाजन बह जाते। कभी समय पर वर्षा न होने से उसकी खेती ऐसे सूख जाती कि उपज खेत में डाले गये बीज से भी कम रहती। ऐसी अवस्था में दिनांक अत्यन्त निराश हो जाता परन्तु उसके अनजाने में, उसके शरीर में जाने वाला प्रत्येक श्वास बाहर जाते समय निराशा का कुछ भाग ले जाता और जीवन का अवलम्ब और लक्षण आशा फिर जाग उठती। ऐसे ही संघर्षों में दिनांक प्रौढ़ावस्था तक पहुंच गया। उसकी आकांक्षा और कल्पना अपूर्ण ही रही।

युवावस्था में सुख और सम्पत्ति प्राप्त करने के दिनांक के प्रयत्न असफल हो जाने पर प्रौढ़ावस्था में भी वह फिर वही प्रयत्न करने लगा। उसे आशा थी, जो कुछ वह स्वयं नहीं पा सका, उसकी सन्तान पायेगी और वृद्धावस्था में वह अपने अन्तिम दिन सुख और विश्राम से बिता सकेगा। परन्तु इसी समय सम्पूर्ण गणों, जनपदों और ग्रामों में समाचार फैल गया कि चक्रवर्ती, दिग्विजयी, सम्राट श्री हर्षवर्धन दिशाओं के अन्त तक पृथ्वी विजय कर निष्शत्रु हो तथागत भगवान बुद्ध के करुणा और त्याग के धर्म में दीक्षित हो, भिक्षु वेष धारण करने जा रहे हैं।

इस विचित्र समाचार से दिनांक की कल्पना और विचार क्षुब्ध हो गये। अपने खेतों में हल चलाते समय, निराई करते समय, जंगल से ईंधन बटोरते समय और रात में थक कर पुआल की चटाई पर बिछी कथरी पर लेटे हुये उसे घोड़े, पालकियों और रथों से घिरे, विशाल हाथी पर बैठे, चमचमाते रत्न जड़े मुकुट पहने सम्राट श्री हर्षवर्धन दिखाई देने लगते—जिनकी सम्पत्ति, शक्ति और सुख के साधनों का अन्त नहीं, जिन्हें इच्छा करने से ही सब कुछ प्राप्त है, वही महाराजा अपनी इच्छा से सब कुछ त्याग भिक्षु के चीवर पहनने के लिये तथागत के त्याग धर्म में दीक्षित होंगे और दिनांक को कल्पना में भिक्षु के गेरुआ चीवर पहने, हाथ में लोहे का भिक्षा-पात्र लिये सिर मुण्डे भिक्षु का शान्त, सुखी चेहरा दिखाई देने लगता।

सम्राट श्री हर्ष की भक्ति तथागत के धर्म में हो जाने के कारण तथागत

के शिष्यों को विशेष प्रोत्साहन मिला। नित्य सहस्रों विद्वान भिक्षुओं का सत्कार राज्य कोष से होता। राज्य का अपरिमित धन सहस्रों बौद्ध भिक्षुओं से भरे मठों के लिये बहने लगा और सम्राट की उदारता का समाचार सुन पृथ्वी के कोने-कोने से गेरुआ वस्त्र धारण किये भिक्षुओं के दल सम्राट श्री हर्ष की राजधानी की ओर प्रवाहित होने लगे।

इन संसार त्यागी भिक्षुओं के लिये पुष्प उद्यानों से घिरे राजप्रासाद और पल्ली ग्राम में गोबर और खाद के ढेर से घिरे फूस के छप्पर एक समान थे। यह भिक्षु अपने उपदेशामृत की करुणा, आकाश से बरसने वाले जल की भाँति समान रूप से सभी स्थानों में मनुष्य मात्र पर बरसाते थे। उनके प्रसन्न मुख-मण्डलों पर दुख से मुक्ति और वैराग्य से प्राप्त शान्ति विराज रही थी। वे अपने आनन्द का भाग सभी को देने के लिये आतुर थे। वे उपदेश देते :

हे संसार के दुखी प्राणियों, राग के समान जलाने वाली दूसरी अग्नि नहीं। द्वेष के समान कलुषित करने वाला मल नहीं। पांच स्कंधों के समान दुख नहीं। शांति से बढ़कर सुख नहीं। हे मनुष्यो, भूख सबसे बड़ा रोग है, संसार परम दुख है, यह जानने वाला ही निर्वाण का परम सुख पाता है 'सुसुखवत ! जीवाम येन्स नो नत्थि'—अहो, हम लोगों के पास कुछ नहीं, और हम कैसे सुखपूर्वक जीते हैं। हम आभास्वर देवताओं की तरह प्रीति का भोजन करते हैं। हे कृषको, खेत का दोष तृण है वैसे ही मनुष्य का दोष इच्छा है। यह शरीर अनित्य है। यह संसार अनित्य है। अनित्य से पाया अनित्य क्या स्थिर होगा ? माया को छोड़ो, ज्ञान को प्राप्त करो !—बोधिवृक्ष के नीचे तथागत ने यह ज्ञान प्राप्त किया है दुखों से मुक्ति पाने के लिये बुद्ध की शरण आओ। धर्म की शरण आओ ! संघ की शरण आओ !

प्रसन्न मुख और शांत चित्त भिक्षुओं को देख और उनका उपदेश सुन दिनांक को अत्यन्त ग्लानि हुई। उसके मन में पश्चाताप हुआ कि सम्पूर्ण जीवन सुख की आशा में वह दुख के कारण बटोरने के लिये दुख के मार्ग पर ही चलता रहा। भिक्षुओं के उपदेश से वह अनन्त सुख प्राप्ति की बात सोचने लगा। ऐसे सुख को पाने का उपाय जिसकी तुलना में चक्रवर्ती महाराजाधिराज सम्राट की अतुल सम्पत्ति और शक्ति भी तुच्छ थी। भिक्षुओं के मुख से सुनी तथागत के जीवन की कथाओं और उपदेशों का मनन करते रहने से दिनांक की कल्पना में सदा ही बोधि वृक्ष की छाया में समाधिस्थ, प्रकाश पुंज

से घिरा बोधिसत्व का रूप दिखाई देता रहता ।

जिस सुख को दिनांक सम्पूर्ण जीवन के प्रयत्न से न पा सका, उस से भी महान सुख को केवल जान लेने (ज्ञान) के उपाय मात्र से पा लेने के विश्वास से वह अत्यन्त उत्साहित हो उठा । उस परम ज्ञान को दूसरे के मुख द्वारा और दुर्गम तर्क से प्राप्त करने की अपेक्षा उस ने अपने ही तप से पाने का निश्चय किया । वैराग्य की ओर प्रवृति और ज्ञान की तृष्णा से दिनांक अपनी भूमि की खेती और परिवार की चिन्ता का बोझ अपने किशोर बालकों और अपनी प्रौढ़ स्त्री पर छोड़, तप द्वारा परम ज्ञान के असीम सुख की खोज में चल पड़ा ।

गंगा के निर्जन तट पर एकान्त देख एक गूलर के वृक्ष के नीचे उस ने समाधि लगा ली । उस ने निश्चय किया, परम ज्ञान द्वारा प्राप्त परम सुख और निर्वाण में ही उस की समाधि परिवर्तित हो जायेगी ।

निर्जन गंगा तट पर सूर्यास्त हो गया । गूलर के वृक्ष पर घोंसला बनाये सैकड़ों पक्षियों के कलरव से कुछ समय के लिये वह स्थान गूंज उठा । चारों ओर फैले पतसर के जंगल की वायु सूर्य की किरणों से पायी ऊष्मा खो शीतल हो गई । घने अंधकार में अनेक शृगाल और दूसरे जीव गंगा का जल पी गूलर के नीचे गिरे फल को खाने के लिये घूमने लगे परन्तु दिनांक पद्मासन से बैठा निरंतर ध्यान करता रहा—सत्य क्या है ? परम सुख क्या है ? और दुखों से मुक्ति कैसे हो ? फिर सूर्योदय से पूर्व वृक्ष पर पक्षियों का कोलाहल हुआ । सूर्य की कोमल किरणों ने उग्रता ग्रहण की । मध्यान्ह हुआ फिर सूर्य पश्चिम की ओर ढलने लगा । परिवर्तन के इस चक्र में समाधि में स्थिर दिनांक परिवर्तन से मुक्ति अमरत्व को खोज रहा था ।

इस प्रकार सोलह सूर्योदय और सत्रह सूर्यास्त हो गये । दिनांक दृढ़ता से समाधि में स्थिर ज्ञान के प्रकाशका आह्वान और प्रतीक्षा करता रहा । शारीरिक दुखों की अनुभूतियां अत्यन्त उग्र हुईं और फिर क्षीण होने लगीं । दिनांक ने संतोष अनुभव किया । वह दुखों से परास्त न हो कर दुखों की अनुभूति से मुक्ति लाभ कर रहा है । वह निरंतर ध्यान मग्न था । परन्तु उस का ध्यान और विचार की शक्ति निष्क्रिय-सी होती जा रही थी । वह बेसुध-सा होता जा रहा था···।

सुध आने पर उसने देखा—उस के पांव समाधि के आसन में बंधे रहने पर भी उस की पीठ लुढ़क कर वृक्ष के तने से सट गई है और वैसे ही उस का सिर

भी। ज्ञान का प्रकाश अभी वह देख न पाया था। अपनी असफलता से उसे ग्लानि हुई। उसने स्वीकार किया वह विचार और ध्यान में असमर्थ हो गया है। परन्तु विचार, ध्यान और तप द्वारा ज्ञान प्राप्ति का उस का निश्चय दृढ़ था। उस ने मन को समझाया—विचार और ध्यान के लिये सामर्थ्य पाना आवश्यक है। शरीर के निष्क्रिय और निश्चेष्ट हो जाने पर वह विचार और ध्यान कैसे करेगा ?

स्वयं ही उस के हाथ फैल गये और शरीर को सामर्थ्य देने के लिये वह पृथ्वी पर गिरे गूलर के फल उठा मुख में ले चूसने लगा। बहुत देर तक ऐसा करने पर विचार सकने का सामर्थ्य उसने पाया। उसे जान पड़ा, दुराग्रह से अपनी विचार शक्ति को नष्ट करना व्यर्थ है। जो है, उसे बलपूर्वक अस्वीकार कर, कल्पना से कुछ नयी बात निकालने का दुराग्रह भी व्यर्थ है। दुख से भय ही दुख है। बहुत समय तक गूलर के फलों का रस चूसता वह इसी प्रकार के विचारों में डूबा रहा और फिर व्यर्थ कष्ट सहन द्वारा वास्तव को कल्पना में अवास्तव मान लेने का विचार छोड़ चल दिया।

× × ×

दिनांक ने देखा। प्रतिदिन और रात्रि गंगा के वक्ष पर पाल उड़ाती सैकड़ों नावें गंगा-यमुना के संगम की ओर चली जा रही थीं। उस ने राज-मार्ग पर भी प्रत्येक ग्राम, जन-पद और नगर से पथिकों की धारायें आ-आ कर नदियों के संगम की ओर बहने वाले जन-प्रवाह में सम्मिलित होते देखीं। उस ने कौतुहल से इस विषय में यात्रियों से प्रश्न किया। उत्तर में यात्रियों ने भी विस्मय से प्रश्न किया—क्या तुम नहीं जानते, चक्रवर्ती सम्राट श्री हर्षवर्धन ने गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर पुण्य पर्व का संयोजन किया है। इस सत्संग में धर्म के तत्त्वों का निश्चय होगा और इस पर्व पर सम्राट अपनी अतुल द्रव्य सम्पत्ति भिक्षुकों को दान कर देंगे। इस दान के पश्चात् पृथ्वी पर फिर कोई याचक न रह जायगा।

दिनांक भी रथों, पालकियों और दूसरी सवारियों से भरे राज मार्ग पर सहस्रों सम्पन्न गृहस्थियों, गेरुआ वस्त्र धारण किये भिक्षुओं और द्रव्याभिलाषी साधारण दीन जन के साथ संगम की ओर चल दिया।

दिनांक ने देखा—गंगा-यमुना के संगम की दक्षिण तट की रेती पर प्रायः एक योजन तक मनुष्य ही मनुष्य फैले हुये थे। पृथ्वी के आदि-अन्त से नाना वर्ण और रूप का जन समुदाय धर्म का तत्व जानने के लिये उत्सुक हो संगम पर आ घिरा था। देश-विदेश के व्यापारी भी अपने अद्भुत और विचित्र पदार्थ ले, आकर्षक दुकानें सजाये संसार से विरक्त होते धर्माभिलाषियों को संसार की ओर आकर्षित करने का यत्न कर रहे थे। समारोह के बीचोंबीच एक विशाल पण्डाल था, जिसमें दस सहस्र भिक्षुओं के एक साथ बौद्ध सूत्रों का पाठ करने की ध्वनि से आकाश आठों पहर गूंजता रहता था।

समारोह के विस्तार में सब ओर स्थान-स्थान पर तथागत बोधिसत्व की जीवन गाथा के चित्र, उनके जीवन के उपदेशों को प्रचारित करते हुये बने थे। स्थान-स्थान पर बौद्ध धर्म के नियमों और करुणा धर्म पालन करने की राज-आज्ञाओं का उल्लेख बहुत बड़ी-बड़ी शिलाओं और भीतों पर सम्राट श्री हर्षवर्धन की मुद्रा सहित किया गया था। पण्डाल के तोरणों पर नगाड़ों की चोट से निरन्तर घोषणा हो रही थी—चक्रवर्ती सम्राट श्री हर्ष द्वारा स्वीकृत तथागत बुद्ध के उपदेश के हीनयान मार्ग के सम्बन्ध में जिस किसी व्यक्ति को सन्देह अथवा शंका हो वह राजगुरू महाविद्वान चीनी यात्री अर्हत इत्सिंग से शास्त्रार्थ करे! शास्त्रार्थ में विजयी होने वाले को सम्राट की ओर से पण्डाल में बना स्वर्ण मुद्राओं का पर्वत और असंख्य बहुमूल्य रत्नों की भेंट दी जायगी और शास्त्रार्थ में पराजित होने वाले का सिर, सद्धर्म की निन्दा के अपराध में, कृपाण से काटकर दिया जायगा। राज-आज्ञा से धर्म की निन्दा करने वालों का ह्रास होकर सब ओर धर्म की विजय हो रही थी।

दिनांक भी पण्डाल में गया। पण्डाल का तीन चौथाई भाग गेरुआ रंग का चीवर धारण किये भिक्षुओं से भरा था। उस्तरे से मुंडे भिक्षुओं के सिर ऐसे जान पड़ते थे जैसे गेरुआ मिट्टी पर कोरी हांडियाँ दूर तक औंधा कर रख दी गई हों। एक चौथाई भाग में अनेक प्रकार के सुन्दर और कोमल आसनों पर रंगीन रेशमी वस्त्रों और आभूषणों से शृंगार किये सामन्तवर्ग और सम्पन्न श्रेष्ठि समाज आसीन था। उनके पीछे साधारण जनसमुदाय केन्द्र में ऊंचे मंच पर सोने के छत्र के नीचे, सोने के सिंहासन पर, चंवरधारी यवनियों और खड्गधारी शरीर रक्षकों से घिरे सम्राट ज्ञान की चिंता से गंभीर मुख लिये बैठे थे। उनके सम्मुख स्वर्ण की चौकी पर कुशासन बिछाये अष्मुत

रूप के चीन देशवासी राजगुरु उपस्थित थे। एक ओर स्वर्ण मुद्राओं का पर्वत और रत्नों के थाल सजे थे। दूसरी ओर लाल वस्त्र धारण किये कन्धे पर दीर्घ कृपाण लिये जल्लाद प्राण दण्ड देने के लिये उपस्थित था।

बौद्ध भिक्षुओं ने सूत्र-पाठ किया और राजगुरु ने विचित्र उच्चारण से धर्मोपदेश दिया—असार को सार और सार को असार समझने वाले, झूठे संकल्पों में संलग्न मनुष्य सार को नहीं प्राप्त कर सकते।.....मनुष्य जैसे बुलबुले को देखता है, जैसे मरुभूमि में जल के भ्रम को मिथ्या जानता है वैसे ही जो मनुष्य इस मायामय लोक को जानता है वही अमर होता है। तोरण पर नगाड़े की चोट से शास्त्रार्थ के लिये फिर चुनौती दी गई।

सामन्त वर्ग और सम्पन्न समाज के पीछे से ऊंचा परन्तु कांपता हुआ स्वर सुनाई दिया और लोगों ने देखा एक ग्रामीण बांह उठा कर कुछ कह रहा है।

व्यवस्था की रक्षा करने वाले शस्त्रधारी राजसेवक उस ग्रामीण दिनांक को राजसिंहासन के सम्मुख राजगुरु के आसन के समीप ले आये। ग्रामीण के पागलपन से विशाल सभा विस्मित रह गई।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री ने ग्रामीण से प्रश्न किया—"तुम राजगुरु से धर्म के तत्व पर शास्त्रार्थ अथवा शंका करोगे ?"

दिनांक ने सिर झुका कर हामी भरी।

"शास्त्रार्थ में पराजय का दण्ड मृत्यु है, जानते हो ?" मंत्री ने चेतावनी दी। दिनांक ने पुनः हामी भरी।

राजगुरु के समीप बैठे एक शिष्य ने राजगुरु की ओर से उनसे प्रश्न किया—"हे ग्रामीण, तुम किस मत के अनुगामी हो; तुम्हारी प्रतिज्ञा क्या है ?"

दिनांक आंखें और ओंठ फैलाये मूक रह गया। ग्रामीण की इस जड़ता से भिक्षु समाज में उसकी अबोध धृष्टता के प्रति घृणा की मुस्कान फैल गई। नागरिक समाज में से कुछ ने मुस्करा दिया और कुछ के मुख पर भय मिली करुणा का भाव छा गया।

ग्रामीण को उत्साहित करने के लिये राजगुरु ने कृपा से मुस्कराकर प्रश्न किया—"हे सौम्य, तुम्हारी शंका क्या है ?"

सचेत हो दिनांक ने उत्तर दिया—"आप जो कहते हैं वह सत्य नहीं। यह संसार मिथ्या माया नहीं।"

राजगुरु के शिष्य ने फिर प्रश्न किया—"आयुष्मान, तुम्हारी शंका के लिये

शास्त्र का प्रमाण क्या है ?"

दिनांक को मूढ़ता से चुप देख राजगुरु ने पुनः सरल मुस्कान से उसे उत्साहित किया, "सौम्य, तुम्हारा तर्क, मत अथवा अनुभव क्या है ?"

"ऐसा मैंने देखा है !" उत्तर दे दिनांक मूक रह गया।

सम्पूर्ण सभा भी इस विचित्र परिस्थिति में मौन थी और सम्राट अपने सिंहासन की पीठ से सहारा लिये बायें हाथ की बन्द मुट्ठी पर ठोड़ी रखे इतनी सी बात कहने के लिये मृत्यु का भय न करने वाले साहसी ग्रामीण की ओर दृष्टि किये उसका अभिप्राय जानने का यत्न कर रहे थे।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री ने सम्राट की ओर देखा और ग्रामीण को सम्बोधन किया, "तुम जानते हो राजगुरु से शास्त्रार्थ में पराजय का दण्ड मृत्यु है। उसी दण्ड के तुम अधिकारी हो !"

लाल कपड़े पहने बधिक का हाथ अपनी कृपाण की मूठ पर दृढ़ हो गया। और खड्ग ने तनिक कांप कर तत्परता प्रकट की।

"परन्तु मैं पराजित नहीं हूं !" ग्रामीण दिनांक ने उत्तर दिया। सभा पर पुनः वितृष्णा भरी मुस्कान फिर गई।

राजगुरु के शिष्य ने पुनः प्रश्न किया, "हे सौम्य, यदि तुम पराजित नहीं हो तो अपनी युक्ति, तर्क और प्रमाण कहो !"

"यदि मेरा अज्ञान राजगुरु की विजय है तो" दिनांक ने स्वर्ण और रत्नों की ओर उंगली से संकेत किया—"इस मायामय असार द्रव्य को स्वीकार करना ही उनके उपदेश की पराजय है। यदि राजगुरु का उपदेश सत्य है तो वह मायामय असार द्रव्य मेरे लिये दें और असार अनित्य जीवन से मुक्ति की ओर स्वयं जायें !" दिनांक ने लाल कपड़े पहिने बधिक की ओर संकेत किया। सभा में पहले भय का सन्नाटा और फिर कौतूहल पूर्ण परिहास की स्फूर्ति फिर गई। राजगुरु भी मुस्करा दिये।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री ने सम्राट के सम्मुख सिर नवाकर प्रार्थना की, "पृथ्वी पर न्याय के रक्षक, चक्रवर्ती सम्राट श्री देव न्यायासन से आज्ञा दें !"

सम्राट ने मानों विचार तंद्रा से जाग उत्तर दिया—"इस विषय में पुनः विचार हो ! इस समय सभा भंग की जाय !"

पराजय के लिये प्राण-दण्ड की अवज्ञा कर परमज्ञानी अर्हत राजगुरु से शास्त्रार्थ करने का दुस्साहस करने वाले अबोध ग्रामीण का वृत्तान्त रात भर

में ही जन-समुदाय में फैल गया। दूसरे दिन सम्राट की धर्म सभा में जनता टूट पड़ी। सम्राट के सिंहासन ग्रहण करने पर लोहे की शृंखला से बांध कर दिनांक को सम्राट के सम्मुख उपस्थित किया गया। दिनांक के मुख पर निर्भय और शान्ति विराज रही थी।

करुणा का व्रत लिये सम्राट रात भर इस अबोध ग्रामीण की बात सोचते रहे थे। राजमंत्रियों और राजगुरु को सम्बोधन कर सम्राट बोले, "अपराधी ने शास्त्रार्थ में पराजय नहीं पायी क्योंकि वह शास्त्र से परिचित नहीं।"

राजगुरु ने कृपा की मुस्कान से सम्राट का समर्थन किया, "देव का वचन यथार्थ है। श्रीदेव न्याय रूप हैं। श्रीदेव की कृपा अनन्त है। एक रात भर इस अबोध ग्रामीण ने अपने सिर पर मृत्यु का खड्ग अनुभव किया है। इसके मूल्य स्वरूप देव इस अबोध को एक लक्ष मुद्रा दान देने की कृपा करें।"

राजगुरु की उदारता से सभा अवाक रह गई। सम्राट सन्तोष और करुणा से मुस्करा दिये। सब ओर से 'साधु-साधु, राजगुरु की जय हो!' की ध्वनि उठने लगी।

उत्सव के अध्यक्ष राजमंत्री के संकेत से प्रतिहारियों ने दिनांक को लोहे की सांकलों से मुक्त कर दिया। कोषाध्यक्ष ने आगे बढ़ एक लाख स्वर्ण मुद्रा की थैली प्रतिहारियों द्वारा सम्राट के सामने उपस्थित कर दी और दिनांक को सम्बोधन कर कहा—"हे भाग्यशाली सौम्य, राजदान ग्रहण करने के लिये आगे बढ़ो।"

अपने ही स्थान पर खड़े रह दिनांक ने कर जोड़, सिर झुका विनय की, "पृथ्वी के पालक धर्मराज सम्राट क्षमा करें, सत्य का मूल्य मेरे प्राण हैं, एक लाख मुद्रा नहीं।"

सम्राट ने विस्मय से राजगुरु की ओर देखा—राजगुरु का मुख विचार से अत्यन्त गम्भीर हो गया था·····।

सत्रादत

छः बरस से इस कमरे में बैठता हूं। इसके लाल फर्श पर अनेक प्रकार के जूते, चप्पल और नंगे पांव आते-जाते हैं। कोई ऐसा चिन्ह शेष नहीं रहता जो किसी की याद दिला सके। परन्तु भीतर खुलने वाले दरवाजे के समीप फर्श पर बिल्ली के पंजों के दो अमिट निशान हैं। जब तक फर्श है, यह निशान रहेंगे। बनते समय जब फर्श अभी कच्चा और गीला था, बिल्ली यह निशान बना गई। फर्श पर अब यदि कोई निशान पड़ता है तो स्वयं ही या पोंछ देने से मिट जाता है।

फर्श पर इन अमिट निशानों को देख प्रायः अनेक बीती हुई बातें याद आ जाती हैं और एक बात बहुत बचपन की, जब अभी स्कूल की शिक्षा का फन्दा गले में नहीं पड़ा था।

पिता जी जंगलात के महकमे में अफसर थे। कभी-कभी दौरे में हम लोगों—यानी मां और बच्चों को भी साथ ले जाते।

पहाड़ी जगह थी। सड़क से कुछ हटकर, एक बावड़ी के समीप छोलदारियां लगी थीं। सड़क कहने से मोटरों, लारियों, साइकिलों, घोड़ा-गाड़ियों और पैदल आने-जाने वालों का जो सिलसिला ध्यान में आ जाता है, वैसा कुछ न था। चढ़ाई-उतराई पर कुछ चौड़ा सा रास्ता था। कभी दो-दो चार-चार पहाड़ी मर्द औरत—औरतें सिर पर और मर्द पीठ पर छोटी सी गठरी लिये निकल जाते। कभी गले में लटके घुंघरू ठुनकाती दो-तीन खच्चरों के पीछे नारियल पीता या खच्चरों की पीठ पर गून लादने का मोटा डंडा कन्धे पर लिये, कान पर हाथ रक्खे मुख आकाश की ओर उठाये ऊंचे स्वर में गाता

कोई पहाड़ी निकल जाता। उस सड़क पर इतनी ही सतर्कता थी।

कितने दिन वहां रहे ? बचपन की स्मृति के आधार पर कह सकना कठिन है परन्तु सड़क और बावड़ी पर सुन-सुन वहां के गाने याद हो गये थे। स्कूल और कालेज में पढ़ी हिस्ट्री और कैमिस्ट्री भूल गई पर उन गानों की कुछ पंक्तियां अब भी याद हैं :—

गोरियेदा मन लगा चम्बे दिया धारा.....'

(गोरी का मन चम्बे की घाटी में लग गया.....)

या :—"कुंजा जाई पैयां नादौण"

ठण्डे पाणी ते बांके न्हौण।

पल भर बाहि लैण ओ द्योरा !

(उड़ते हुये कौंच पक्षी नादौण में जा उतरे, वहां ठण्डे पानी में बांके जवान नहाते हैं। आओ देवर, ऐसी जगह तो पल भर बैठेंगे ही)

बावड़ी के समीप कुछ ऊंचाई पर मोटी फटी-फटी पपड़ी से ढंके चीड़ों के ऊंचे वृक्ष अपनी शाखाओं में डोरे जैसे पत्तों के सैकड़ों हरे चंवर डुलाते रहते थे। उन वृक्षों में से हवा गुजरने से निरन्तर एक 'आह' की सी 'सूंक' सुनाई देती रहती। पेड़ों के नीचे एक कब्र थी। कब्र से हट कर ढलवान पर दो झोपड़ियों में कुछ लोग रहते थे। उनके यहां भालू जैसे दो काले कुत्ते और कुछ मुर्गियां थीं। मैं और मुझ से तीन बरस छोटी बहिन प्रायः उनसे खेलते और उन झोपड़ियों में ही रमे रहते थे।

इन सब स्मृतियों का खेल रही है सआदत। इतने वर्ष बीत जाने, दुनिया और जीवन बदल जाने पर भी वह बात साफ दिखाई देती रही। माथे का आंचल अंगूठे और तर्जनी में ले, जमीन छू वह मां के सामने प्रणाम या सलाम करती थी। कुर्सी, पलंग या पीढ़े पर बैठी मां के सामने वह जमीन पर बैठ जाती। सभ्य समाज के ढंग से सिमिट कर नहीं, पांव सामने फैले रहते और घुटने उठे हुये।

घुटनों पर रखे हाथों की उंगलियां एक दूसरे में उलझी हुईं, हथेलियां सामने की ओर। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों के नीले कोयों और होठों पर एक अमिट हंसी रहती। चेहरा पकी खुबानी का रंग लिये लम्बा सा, आंखों और ओठों के बीच उठी हुई सुघड़ नाक।

बहिन सीता को वह मुन्नी पुकारती थी। उसे देख सीता दौड़ कर चिपट

जाती । प्रायः वह हमारी छोलदारियों में बनी रहती । मां से बातचीत करती । मां अनेक काम—दाल बीनना, तरकारी काटना या दूसरे कामों में हाथ बंटाती रहती । सबसे बड़ा काम था सीता को संभालना । उसके पूर्ण वक्ष पर सिर रख सीता मां को भी भूल जाती ।

इसके बाद बचपन में कितनी ही बार अपनी सहेलियों और परिचितों से कहते हुये मां को सुना—"खूबसूरती तो एक दफे देखी है ? आहा, गूदड़ी में लाल !"

कहावत है—'मोहि न नारि नारि के रूपा' परन्तु इस रूप पर नारी भी मोहित थी । मां प्रायः ही सुनाती—खूबसूरती एक बार देखी है । कांगड़ा से नादौण जाने वाली सड़क पर रानीताल के समीप चमोला पीर की समाधि है । वहा फकीरों के यहां एक बहू थी—सआदत ! मोती का सा रंग, ऐसे नख-सिख की रानियों के यहां भी क्या होंगे । देखकर भूख-प्यास भूल जाय एक बार ! और स्वभाव की ऐसी मीठी कि दोनों बच्चे दिन भर उससे चिपटे रहते । बच्चों को भी क्या रूप की परख होती है भाई, किसी दूसरे के पास जाते ही न थे ।

लड़कपन में अपनी पढ़ाई या खेल में लगे रहने पर भी कई दफे आड़ से मां को सआदत के रूप का बखान करते सुना—"मुझे तो ऐसे रूप की बहू चीथड़ों में भी मिले तो अपने लड़के के लिये आज ले आऊं !" सुनकर मन में गुदगुदी सी उठ आती !

इसके बाद जब साहित्य और कविता में रूप और हुस्न का जिक्र देखा और पढ़ा, शकुन्तला, जूलियट और जुलैखां की कल्पना की तो सदा ही सआदत का मोती का रंग और कलम की नोक से गढ़ा नख-सिख कल्पना में जाग उठता । जब-जब अपने विवाह के विषय में माता-पिता को चर्चा करते सुना, सआदत का रूप आंखों के आगे फिर गया । माता-पिता शायद सआदत को भूल गये परन्तु मेरे लिये वह रूप नित्य अधिक यथार्थ हो रहा था । मेरे लिये सौन्दर्य का अर्थ था—सआदत और स्वयं ही अपने ऊपर हंसी भी आती । बीस वर्ष में वह क्या रह गया होगा ।

युनिवर्सिटी से डाक्टर की डिग्री मिली और उसके साथ ही युनिवर्सिटी में लेक्चरार की जगह । अपनी कमाई का धन चाहे वह अधिक न था, उसे हाथ में ले पुरुषत्व की एक अनुभूति और आत्म-विश्वास से गर्दन ऊंची हो गई । घर

में सदा चलते रहने वाले अपने विवाह के प्रसंग की बात स्वयं मन में आने लगी। अपना घर, अपनी पत्नी और शायद एक सन्तान। एक उमंग सी अनुभव हुई।

वह सब तो होना ही था। उस वर्ष गरमी की छुट्टियों में पहले अकेले ही प्रकृति और उसके सौन्दर्य को देखने के लिये घूमने का निश्चय किया।

मन का संस्कार सौन्दर्य के तीर्थ की ओर खींचे लिये जा रहा था, परन्तु स्वयं अपना तर्क ही अपने ऊपर हंस रहा था। क्या बीस बरस बाद भी वह सौन्दर्य उस प्रकार होगा? कौन फूल है जो मुर्झाता नहीं? परन्तु फिर संस्कार खींचे लिये जा रहे थे। कांगड़ा पहुंचा। कांगड़े से नादौण जाने वाली सड़क बीस वर्ष में वास्तव में ही सड़क बन गई थी। अब उस पर मोटर लारी समय से आती जाती है। रानीताल पहुंच लारी से उतरा। पहाड़ के कन्धे पर सरो के वृक्षों से घिरा छोटा सा ताल स्वप्न में देखे किसी परिचित स्थान जैसा जान पड़ा।

सौन्दर्य की प्रतीक सआदत को देखने की आशा और कल्पना न थी। केवल वह स्थान देखने की इच्छा थी जिसके सम्बन्ध से सौन्दर्य का एक आदर्श कल्पना में बन पाया था और चमोला के पीर के पुजारी फकीरों से मिलने की इच्छा थी जहां सौन्दर्य को अनासक्त भाव से, जीवन में पहले-पहल जाना था। उस संस्कार से सौन्दर्य मेरे लिये सदा माता के स्थान पर, अपने से ऊंचा कल्पना में आराधना की वस्तु रहा।

राह पूछ कर चमोला के पीर की समाधि की ओर चला। पहाड़ी की ढाल पर सांय-सांय करते चीड़ के हरे जंगल, नीचे सूखकर गिरी लाल पड़ गई चीड़ के पत्तों की सीखें, गर्ने की झाड़ियां, नीचे तलैटी में आम के पेड़ों का झुरमुट, सब कुछ स्वप्न के परिचित प्रदेश जैसा। सामने की ऊंचाई पर कुछ चौरस जगह में चूने से पुती चमोला की समाधि घने चीड़ों के नीचे दिखाई दी। उसकी ओट फकीरों की झोपड़ियां। चीड़ के पेड़ स्वप्न में देखे पेड़ों से बहुत ऊंचे और बड़े जान पड़े। तलैटी में बावड़ी को पहचान गया। जिस नाले में उसका जल बह जाता था अब भी पड़ोस की जगह से अधिक हरा, बनफसे के पत्तों से छाया था।

सोचा, सब कुछ वैसे ही है परन्तु मैं अब वही नहीं हूं। वे लोग भी वैसे न होंगे, सआदत न रही होगी, होगी भी तो स्मृति के लिये रखे फूल की सूखी

पंखुड़ियों की भांति । मनुष्य का सौन्दर्य ही क्यों सबसे अधिक नश्वर है ? नीचे बावड़ी पर एक बूढ़ा नीले रंग का तहमत कमर में लपेटे, बगल में नेचा लिये बैठा था । समीप दो घड़े रखे थे । नेचा गुड़गुड़ाते हुये बूढ़ा दूसरे हाथ में लिये बर्तन से बावड़ी का पानी उलीच-उलीच कर घड़ा भर रहा था ।

पगडण्डी से बावड़ी पर उतर गया । फकीर मियां को पीठ पीछे से पुकारना ही चाहता था कि वही जोर से पुकार उठे ।

पुकार सुनकर स्तब्ध सा रह गया । कानों को विस्मय हुआ । दूसरे ही पल फकीर मियां ने अपनी पुकार दुहराई—"सादत ओ ! ओ सादत !" और आवाज को पहाड़ियों में दूर तक ठेल देने के लिये पुकार के साथ एक कूक की ठेल । पुकार के उत्तर में सआदत आयेगी । उन बूढ़े मियां के अनुकूल ही सआदत की कल्पना मन में होने लगी—इन्हीं के समान जर्जर । दोनों एक-एक घड़ा उठाकर लौटेंगे । परन्तु वह अभी जीवित है । वह सौन्दर्य की स्मृति ! उसे देखने की आशा से श्रद्धा का भाव आ कण्ठ रुक सा गया ।

क्षण भर बाद ही उत्तर में पुकार सुनाई दी—"आई नो बापू ऊ ऽ ऽ ऽ ।

शब्द की दिशा में आंखें उठ गयीं । कब्र के टीले पर कुछ दिखाई न दिया परन्तु उस स्वर में उठते यौवन की तीव्रता और पुलक भ्रम की वस्तु न थे । पुकार की कूक वैशाख की कोयल की मादकता लिये । मन ने पूछा—क्या यह सआदत की पुकार है ? क्या सआदत मेनका, उर्वशी और वीनस की भांति चिर यौवन सौन्दर्य की देवी है ?

सम्मुख कब्र के टीले की ओट से नीचे उतरती पगडण्डी पर काले कपड़े पहने एक नवयुवती सिर पर एक खाली घड़ा औंधा रखे तेज चाल से फिसलती आती दिखायी दी, जैसे पत्थर लुढ़कता चला आ रहा हो ।

और प्रत्यक्ष देखा सआदत का वह रूप ! मोतिया रंग, फैली हुई आंखें, बड़े-बड़े कोयों में भोला नीलापन, ऊंची नाक, पतले लाल ओंठ ! उमंग की लहर उठा देने वाले केन्द्र की तरह । गर्व से उठा वक्षस्थल तेज चाल से चंचल । समीप पहुंच मेरी ओर उसने कौतुहल से देखा और सम्भवतः मेरी दृष्टि की तीव्रता से तनिक सिमिट गई ।

साथ में लाया खाली घड़ा उसने धीमे से बावड़ी की जगत पर टिका दिया । धीमे ही दो बोल उसने बूढ़े से कहे । उसके मुख पर वह मुस्कान ! भारी घड़ा दोनों हाथों से हुलार कर सिर पर रखा । एक बार मेरी ओर

देखा और टीले की चढ़ाई पर चढ़ने लगी। शरीर में एक स्फुरन सी दौड़ गई।

जिह्वा पर आ गई खुश्की निगल बूढ़े मियां को सलाम किया—"क्या बावड़ी में पानी नहीं आ रहा ?" बावड़ी में पानी बहुत धीमे-धीमे सिम रहा था और घड़ा डूब सकने की गुंजाइश न थी।

माथे पर हाथ रख हजूर सम्बोधन से फकीर मियां ने उत्तर दिया—"गरमी के दिनों में कुछ रोज ऐसे ही तकलीफ होती है।"

परिचय जगाने के लिये मियां से बीस वर्ष पूर्व का जिक्र किया। आंखों की मन्द ज्योति को हथेली की ओट से सहारा दे उन्होंने मुझे सर से पैर तक देखा—"हजूर, एक हिन्दू साहब जंगलात के बड़े अफसर खेमे लगाकर दो महीने रहे थे। बड़े गरीब परवर !"

"हमारी मां कहती हैं—यहां एक सआदत बीबी हैं। मां ने उन्हें सलाम कहा है ?" अपना साहस बढ़ाने के लिये मैंने कहा।

"हां हजूर इस लड़की की मां ! अब बूढ़ी हो गई। पानी का घड़ा इस चढ़ाई पर अब हम लोगों से नहीं जाता। मांग-तांग लाते हैं, इसी बेटी का सहारा है। इसे भी सआदत कहते हैं। मां से मिलती सी है।"

सआदत टीले पर से फिर लुढ़कती चली आ रही थी। अपने पिता से मुझे बातें करते देख उस का संकोच कम हो गया। दूसरा भरा घड़ा उठा, हुलारा दे उसने सिर पर रख लिया। उस के शरीर का वह क्षणिक तनाव ! उस कमान के तनाव से एक अदृश्य बाण छूट कर मन पर आ लगा। जिह्वा पर एक खुश्की और शरीर में स्फुरण सा हुआ।

बूढ़ी सआदत को सलाम करने मियां के साथ टीले के ऊपर झोंपड़ी में गया। परिचय पा बुढ़िया ने सिर पर हाथ फेरा। मां की बाबत बहुत कुछ पूछा। मेरे बचपन की कुछ स्मृतियां सुनाईं। सआदत चेहरे पर सहज संकोच और फैली हुई आंखों में कौतूहल लिये मेरी ओर देख रही थी। उसने मेरे सत्कार के लिये दौग्धले और आक्खे (पहाड़ी अंजीर और स्ट्राबरी) पेश किये और एक कटोरे में भैंस का दूध बहुत सी मलाई छोड़ कर।

वह सामने आ बैठी। वैसे ही, जैसे उस की मां किसी समय मेरी मां के सामने बैठा करती थी। शिकारी से निश्शंक हिरनी की तरह। आंखें उस पर टिक न पाती थीं। शायद, जैसे देखना चाहता था वैसे देखने का बल न था। और कितनी ही बातें जो मां अपनी भावी बहू के सम्बन्ध में कहती थी, याद आ

रही थीं और असामर्थ्य का एक भाव मन को शिथिल किये दे रहा था।

दोपहर पश्चात् की मोटर से कांगड़ा लौट जाना जरूरी था इसलिये समय रहते ही चला। सिर झुकाये सोचता जा रहा था। जैसे चोट लगने के कुछ समय बाद उस का दर्द उठता है। सौन्दर्य की कल्पना में प्रतिष्ठा और गरिमा का जो भाव मस्तिष्क में लेकर आया था वह हृदय में उतर उसे अस्थिर कर रहा था। सौन्दर्य पूजा की वस्तु न रह कर पीड़ा का कारण बन रहा था। सौन्दर्य की नश्वरता के प्रति सहानुभूति उस के अस्तित्व की अनुभूति से एक विकलता में बदलती जा रही थी।

मन का उद्वेग दूर हो जाने पर भी सआदत के सौन्दर्य को भूला नहीं हूं। और खयाल है कि नारी का सौन्दर्य उस के व्यक्तित्व की भांति नश्वर नहीं। वह मनुष्य की परम्परा के सामान ही शाश्वत है। जैसे फूल के बीज से फूल पैदा होता ही रहता है···।

साग

जिला जेल की फांसी कोठड़ियों में विशेशरप्रसाद और रहमान खाँ बन्द थे। जैसे लोहे के पिंजरों में बन्द सरकस के शेर और चीते को लोग विस्मय और कौतूहल से देखते हैं, वैसे ही बड़े-बड़े अंग्रेज सिविल सर्जन साहब, बगावत के पश्चात् जिले की व्यवस्था सुधारने के लिए आये अंग्रेज कलक्टर साहब, फाँसी की कोठड़ियों के जंगले के सामने खड़े हो, इन कैदियों को देखते थे। परन्तु इन बड़े अफसरों के मुख पर सरकस देखने वालों का कौतूहल नहीं घृणा थी।

जब यह दोनों कैदी जेल में आये इन के शरीर पर गोलियों के घाव थे। अंग्रेज सिविल सर्जन साहब ने कर्तव्य का पालन करने के लिये चीर-फाड़ कर विशेशरप्रसाद के घुटने से और रहमान खां की कमर से गोली निकाली और उन की दवा-दारू की। इस कर्तव्य का पालन करते समय साहब का चेहरा घृणा से छुहारे की भांति सिकुड़ जाता।

अपने चारों ओर अदब से सहम कर खड़े हुये अपने हिन्दुस्तानी मुसाहिबों जेलर, जेल के डाक्टर, कम्पाउण्डर, जेल के बाबू लोगों और वार्डरों को सुना कर साहब टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी में कहना न भूलते—"इन बदमाश लोगों ने साहब लोग को बंगले में जला कर मारा है।"

गोलियों के घाव ठीक हो जाने से पहले ही दोनों कैदियों के पांवों में साहब के हुक्म से बेड़ियां डाल दी गईं। उन पर तुरन्त मुकद्दमा चलाकर सजा देने के लिये सेशन जज स्वयं जेल में तशरीफ़ लाये। शीघ्र ही पर्याप्त गवाही और सुबूत पेश हो जाने से उन्हें सेशन जज साहब ने आग लगाने और हत्या के अपराध में फाँसी का हुकुम सुना दिया।

सरकार के कायदे से फाँसी की सज़ा पाये प्रत्येक व्यक्ति के लिये हाईकोर्ट में अपील की जाती है। इन दोनों अभियक्तों की ओर से अपील की गई। हाईकोर्ट से फाँसी की सजा रद्द हो जाने या सजा पर हाईकोर्ट की मंजूरी की मोहर लग जाने की प्रतीक्षा में उन्हें लोहे की सींखचादार कोठरियों में बन्द रखा गया।

अंग्रेज सीविल सार्जन साहब जब भी इन कोठड़ियों के सामने आते, घृणा की सिकुड़न उन के चेहरे पर आ जाती। अधिक कुछ कहने का अवसर न होने पर 'मर्डरर' (हत्यारे) ! कह कर वह एक ओर थूक देते।

साहब का रुख देख ऐसे भयंकर कैदियों के ऊपर हिन्दुस्तानी जेलर, दूसरे अफ़सर और वार्डर सब विशेष सख्ती रखते थे। कभी कोई दूसरा कैदी उन की कोठड़ी की छाया के समीप भी न जा पाता। उन के सामने आते ही सब अफ़सरों और वार्डरों के चेहरे पत्थर की तरह भाव शून्य और कठोर हो जाते।

विशेशरप्रसाद और रहमान खां अपने अपराध का बोझ जानते थे। क्षमा की उन्हें कोई आशा न थी परन्तु निराशामय विस्मय था--इन तमाम हिन्दुस्तानियों को उन से द्वेष और भय क्यों है ? जिस अंग्रेज़ सरकार से वे लड़ने गये थे, उस सरकार का अंग्रेज़ तो कभी-क़भी ही दिखाई देता है। वह सरकार तो स्वयं उस जैसों के ही हाथ से चल रही है। देश को आजाद किया जाय तो किससे ?

अंग्रेज़ों को जलाकर उन का खून करने वाले इन हत्यारों के प्रति साहब लोगों का क्रोध और घृणा के कारण प्रतिहिंसा का अन्त न था। हाई-कोर्ट से दोनों को फांसी लगाने की स्वीकृति आने पर इन्हें फांसी की रस्सी पर छटपटाते देखने के लिये, जेल के बड़े साहब और बगावत से जिले की बिगड़ी अवस्था सुधारने के लिये आये दूसरे अंग्रेज़ अफ़सर तड़के ही जेल पहुंचे।

मृत्यु सामने थी। मृत्यु की ओर उन्हें शत्रु की प्रतिहिंसा ले जा रही थी। शरीर देकर भी उस प्रतिहिंसा के सम्मुख स्वतंत्रता की भावना को जीवित रखने के लिये, परास्त न होने के लिये, उन्होंने फांसी के तख्ते पर पहुंच कर भी पुकार लगाई--"इंकलाब ज़िन्दाबाद ! भारत माता की जय !"

और उन्होंने अपने चारों ओर खड़े हिन्दुस्तानियों की ओर देखा—वे काठ की मूर्तियों की भांति भावशून्य और स्थिर थे।

मृत्यु के क्षण में भी अपनों से अपनेपन का कोई संकेत उन्हें न मिला। केवल शत्रु के चेहरे पर दांत पीस लेने का संकेत था।

विशेशर और रहमान के सम्बन्धी रोते हुये अपने आदमियों की लाशें पाने के लिये जेल के फाटक पर खड़े थे। कलक्टर साहब ने वह प्रार्थना स्वीकार नहीं की। बाग़ियों की लाश का प्रदर्शन शहर में होने से शान्ति भंग होने का भय था।

सिविल सर्जन साहब के हुक्म से हिन्दुस्तानी जेलर हाज़िर हुये। साहब ने हुक्म दिया—"दोनों बाग़ियों की लाशें जेल के भीतर ही दफ़नाई जायं।" दांत पीस कर साहब ने कहा, "और इनकी लाशों पर मर्सा का साग बोया जाय। साग तैयार होने पर सब साहब लोगों के यहां भेजा जाय!"

× × ×

मर्सा का साग बहुत जल्दी तैयार हो जाता है। गहराई तक भुरभुरी कबरों की जमीन पा वह और भी जल्दी खूब ऊंचा उठ आया। एक दिन साग को खूब हरा-भरा देख सिविल सर्जन साहब ने साग साहब लोगों को भेजे जाने की फ़रमाइश की।

जेल भर में खबर फैल गई—बाग़ियों की कब्रों का साग आज साहब लोगों के यहां गया है। रात पड़ने पर जेल बंद हुआ। बारकों में बंद प्रत्येक कैदी के मन में साग की बात थी। प्रत्येक कैदी कल्पना कर रहा था—हिन्दुस्तानी को अंग्रेज खा रहा है परन्तु सभी कैदियों का मुंह बंद था :—ऐसी बात कहने की रिपोर्ट अगर साहब के सामने हो जाय?

जेल के प्रत्येक अफ़सर के मन में साग की बात थी। प्रत्येक अफ़सर और वार्डर मन में कल्पना कर रहा था—कि अंग्रेज हिन्दुस्तानी को खा रहा है परन्तु जेलर साहब दूधिया मसहरी में, पंखे के नीचे, दिल में उबाल लिये तकिये पर मुंह दबाये पड़े थे। डाक्टर और कम्पाउण्डर साहब चादर में सिर छिपाये यही सोच रहे थे। बड़े वार्डर मैले फटे कम्बल पर आंख मूंदे, और केवल बीस रुपये माहवार पाने वाले नये सिपाही खुरांटी खटिया पर औंधा मुंह किये यही सोच रहे थे परन्तु शब्द किसी के होठों पर न था।

× × ×

जिले में अमन हो जाने की खुशी में साहब लोगों के क्लब में उस दिन डिनर

था। हिन्दुस्तानी बैरे स्वच्छ तश्तरियों में वह हिन्दुस्तानी बाग़ियों की क़ब्र पर उगा साग साहब लोगों के सामने पेश कर रहे थे।

उन्होंने भी साग की कहानी सुनी थी। इन के चेहरे आंतक से सहमे हुए थे, पांव में कमज़ोरी अनुभव हो रही थी परन्तु हाथ भय से साहब की सेवा में मशीन की भाँति अपना काम करते जा रहे थे।

बात सब के दिल में थी परन्तु किसी के होठों पर न आ पाती थी। साहब के भय से और आपस में एक दूसरे के भय से।

आह सब के दिल में थी परन्तु आहें सब की अलग-अलग बिखरी हुईं, निर्जीव श्वासों की भांति उन के हृदय से निकल हवा में समाप्त हो रही थीं। एक साथ मिल कर वे आंधी भी शक्ति न पा सकती थीं, क्योंकि उन्हें परस्पर भय था। भय —अपनों से भय, शत्रु से भय, सब ओर भय···!

पहाड़ का छल

अपनी कम्पनी के साबुनों के नमूनों का सूटकेस ले पठानकोट से लारी पर डलहौजी पहुंचा। गिनी-चुनी, बिखरी हुई बेरौनक सी दुकानें देख कारोबार के लिये विशेष उत्साह न हुआ। कुली के सिर पर सूटकेस और चिलमचो उठवाये, चकले पत्थरों से मढ़े सकरे बाजारों की चढ़ाई-उतराई पर कमर को दोनों हाथों से सहारा दिये, दूकान-दूकान फिरते दोपहर हो गई।

जून के महीने में भी उस कठिन परिश्रम से पसीना न आया। पहाड़ी हवा क्या थी, नई दुलहिन के मेंहदी रचे और सौंधाते हाथों से भी उस का स्पर्श अधिक सुखद था। सड़क किनारे देवदार के भारी वृक्ष हरे रंग के विशाल मन्दिरों की भांति अपनी चोटी, दृष्टि से इतनी ऊंची उठाये थे कि उन्हें देखने के यत्न में टोपी सिर से गिर जाय! हवा की हिलोर से उन की टहनियां ऊपर-नीचे झूमती थीं जैसे सुलाने के लिये थपकियां दे रही हों। और! उत्तर-पूर्व पहाड़ियों की चोटी पर! उत्तर से पूर्व तक फैली धूप में खिलखिलाती बरफ़! ···कभी खयाल आता, चांदी की दीवार बनी है और मन में उमंग आने से कल्पना होती—स्वर्ग की अप्सराओं ने अपनी उजली साड़ियां धो कर सूखने के लिये धूप में फैला दी हैं।

कम्पनी से मिले प्रोग्राम में चम्बा का दौरा भी था। देश से पहाड़ आने वाले व्यापारियों और एजेण्टों की अन्तिम सीमा चम्बा ही है। इस के आगे न तो सड़कें ही हैं और न कोई शहर-बाज़ार।

डलहौजी से सड़क नीचे उतरती गई। टट्टू है पर सवार होकर चलने से झकझोर हो जाता है और पैदल चलने से पांव खून भर कर, झटकी हुई बोरी की तरह भारी पड़ जाते हैं।

चम्बा छोटी सी पहाडी रियासत है। चम्बा शहर पहाड़ की तलहटी में चट्टानों से सिर मारती, फेन उछालती रावी नदी के किनारे छोटे से मैदान में बसा है। नदी न मालूम होकर बहते हुये झरने जैसी जान पड़ती है। चारों ओर उठे बीहड़ पहाड़ों से घिरी घाटी में हरियाली खूब है परन्तु डलहौजी की गरिमा नहीं है। ऐसा नहीं जान पड़ता कि संसार से बहुत ऊंचे पहुंच गये हों।

देश के मैदानों से बड़ी-बड़ी सेनाओं का यहां चढ़ आना आसान नही। शायद इसीलिये किसी राजा ने अपनी स्वतंत्र रियासत बना निर्भर रहने के लिये यह प्रदेश चुना होगा।

चम्बा में सराय है परन्तु वह ठिगने पहाड़ी लद्दू बैलों, खच्चरों और बकरियों से भरी थी इसलिये गुरुद्वारे (सिख मन्दिर) में ही शरण ली।

भोजन कर सफर की थकान मिटाने के लिये लेट गया और नींद आ गई। जब सोकर उठा, चम्बा के आधे मैदान पर पश्चिम ओर की पर्वत-श्रेणी की छाया छा चुकी थी। मैदान के किनारे पहाड़ की जड़ के साथ-साथ कुछ दुकानें हैं। और उनके पीछे दो घरों की चौड़ाई तक बस्ती। यही बाजार है जिसे पहाड़ के लोग गर्व से 'नगर' कहते हैं।

सोचा—अभी संध्या में दूकानों का चक्कर हो जाय और कल सुबह ही डलहौजी लौट चलें। सुबह की ठंडक में चढ़ाई आसानी से हो सकेगी।

पांच-छः दूकानें देख लेने में समय लगता ही कितना है? पहाड़ों के पीछे छिप जाने वाले सूर्य का प्रकाश आकाश में पहले से मौजूद शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की चांदनी में बदलने लगा। नगर की दुकानें बढ़ाई जाने लगीं। मेरा काम भी समाप्त हो चुका था।

अन्त में जिस पंसारी की दूकान पर गया, वहां चम्बा मिडिल स्कूल के एक मास्टर साहब से भेंट हुई। कम्पनी का एक कलेण्डर उन्हें भेंट करने से मित्रता भी हो गई।

दुकान से मैदान की ओर कदम रखते हुये मास्टर साहब से चम्बे में देखने लायक चीजों के बारे में प्रश्न किया। उत्साह से उन्होंने उत्तर दिया—"हां, हां महाराज के महल हैं, महाराज का क्लब है, लाइब्रेरी है, अस्पताल है, डाकखाना है.....।"

किसी के रहने का निजी मकान कैसा भी हो, झोंपड़ा हो या महल उसे देखने जाना कुछ जंचा नहीं। मैदान में बसी चम्बा की शेष आबादी से ऊंचाई

पर मास्टर साहब ने उंगली से यह सब स्थान दिखा दिये। कुछ दर्शनीयता उनमें जान पड़ी।

समीप ही रेलगाड़ी गुजरने का सा शब्द निरन्तर सुनाई दे रहा था। पूछने पर मास्टर साहब ने हंस कर बताया। यह तो नदी की आवाज है।

नदी की ओर उतर गये। नदी बड़े-बड़े पत्थरों से टकराती बढ़ी चली जा रही थी। किनारे पर भीमकाय चट्टानें, खड़े हाथी के आकार की पड़ी हैं। उन्हीं पर हम लोग जा बैठे। चांद ऊपर उठ आया था और सम्पूर्ण घाटी पर रुपहला धुंधलापन छा गया। रावी के फेनिल चंचल जल में चन्द्रमा के असंख्य प्रतिबिम्बों से ऐसा जान पड़ता था मानो दीपशिखाओं का अथवा शीतल आग का प्रवाह वहा चला जा रहा हो।

बायीं ओर एक छोटी पहाड़ी की चोटी पर एक बुर्ज सा धुंधली चांदनी में दिखाई दिया। मास्टर साहब से पूछा—"वह भी चट्टान है क्या? कैसा दिखाई देता है, जैसे बनाया गया हो!"

"नहीं, उसे गुजरी का बुर्ज कहते हैं।" मास्टर साहब ने कहा, और मेरा ध्यान दूसरी चोटी पर एक श्वेत विशाल चट्टान और मन्दिर की ओर खींचते हुये बोले, "और यह सतियों का टियाला (चौतरा) है। पिछले समय में महल की रानियां राजा की मृत्यु के बाद वहीं सती होती थीं। वहां एक छोटा-सा मन्दिर है। अब भी राज्य की ओर से पुजारी रहता है।"

मेरा ध्यान फिर बुर्ज की ओर गया। पूछा—"गुजरी का बुर्ज कैसा?"

"महाराज के पड़दादा के समय महल की एक रानी बदचलन हो गई थी। रानी क्या, किस्सा यों है कि महाराज पांगी से लौट रहे थे। उन्होंने एक जवान, बेहद खूबसूरत गुजरी को देखा। उसकी खूबसूरती का क्या कहना? महाराज के महल में बड़े-बड़े राजाओं, महाराजाओं और सरदारों के घर से बासठ रानियां थीं। लेकिन उसके आगे सब फीकी पड़ गयीं। कोई उसकी परछाईं को न पहुंच पाती।

"चांदनी में फूटी चम्पा की कली-सी, बिलकुल अप्सरा। ऐन चढ़ती उम्र, सोलह-सत्रह बरस की। किस्सा है कि महाराज ने उसे देखा और महल में बुलवा लिया। उसके आगे महाराज सब कुछ भूल गये। एक सौ भैंसों के दूध का झाग मल कर वह सौ मन फूलों में बसाये पानी से नहाती थी लेकिन कुजात कभी छिप नहीं सकता।

"महाराज बूढ़े हो गये। पूजा-पाठ में दिन बिताने लगे। एक दिन महाराज अचानक रात में गुजरी के महल में जा पहुंचे और उसे महल के एक जवान नौकर के साथ पाया। गुजरी ने उसे अपना भाई कहकर महल में नौकर रखवा लिया था।

"महाराज ने उस नौकर को उसी समय कत्ल करवा दिया। राज-मजदूर बुलवाये गये, और गुजरी को उसी जगह" मास्टर ने बुर्जी की ओर संकेत किया, "खड़ा करवा, मशालों की रोशनी में उसके चारों ओर चूने और पत्थर से बुर्जी चुनवा दी गई। कहते हैं ऊपर एक छेद है; उसी से ज्वार की दो रोटियां और घड़िया भर पानी रस्सी में लटका कर पहुंचा दिया जाता था। मर जाने के बाद भी उसे निकाला नहीं गया।"

"लेकिन यह कैसे मालूम होता था कि वह जिन्दा है या मर गई ?" मैंने प्रश्न किया।

"मालूम क्या होता ? ऐसा ही सुनते हैं भाई। और उसका मरना-जीना क्या ? मर तो गई ही समझो !" घर लौटने की आवश्यकता बता मास्टर साहब उठ गये।

मुझे हिलते न देख मास्टर साहब ने कहा—"देर तक न बैठियेगा, यहां छल बहुत होता है।"

चौंक कर पूछा—"क्या डाकू ? लूट-मार ?"

सिर हिलाकर उन्होंने उत्तर दिया—"नहीं, नहीं, ऐसा तो यहां कभी सुना भी नहीं। वह देश की बातें हैं। बात यह है कि इन्हीं चट्टानों पर शहर के मुर्दे जलाये जाते हैं। प्रेत लोग यहां रात में बड़े-बड़े नाटक करते हैं परन्तु शायद आप, शहरों के लोग तो इन बातों में विश्वास नहीं करते ?"

"ओह !" कह कर मैं बैठा रहा और मास्टर साहब चल दिये।

मुझे कुछ जल्दी न थी। गुरुद्वारे की अंधेरी कोठरी की अपेक्षा शीतलता की सिहरन पैदा करती, फरफराती पहाड़ी हवा और सामने चांदनी में उद्दाम फेनिल प्रवाह कहीं अधिक सुहावने थे।

बायीं ओर छोटी पहाड़ी की चोटी पर बनी, कोहरे में छिपती जाती बुर्जी की ओर दृष्टि किये, सौ भैंसों के दूध का झाग मल, सौ मन फूलों में बसाये जल से स्नान करने वाली सुन्दरी की बात सोच रहा था। कितना कोमल और कितना विमल रहा होगा उसका रूप ? कितना सुख राजा ने उसके प्रेम में

पाया होगा ? और कितनी दारुण व्यथा उस बुर्ज में मुंद जाने के बाद गुजरी ने पायी होगी ?·····क्या वह रोयी-चीखी होगी ?·····कितनी व्यथा से उसके प्राण निकले होंगे ? उस पीड़ा का कोई रूप और सीमा निश्चित न कर पा रहा था ।

दृष्टि सतियों के टियाले की ओर गई और आग में जलती रानियों की पीड़ा का ध्यान आया और सोचा—क्या उस पीड़ा के कारण वह चीख न उठती होंगी ?·····क्या वह छटपटाती न होंगी ? क्या बासठ, बयासी और एक सौ सभी रानियां राजा के प्रेम में मर जाना ही चाहती थीं ?·····क्या सबकी यही इच्छा थी ? पैंतालीस-पचास बरस से लेकर सोलह-अठारह बरस की, महल में केवल बरस भर पहले आई रानी तक !

सतियों के टियाले पर सहसा महाराज का शव राजसी ठाठ से सजी विस्तृत अर्थी पर दिखायी दिया ।

देखा—महल में कोहराम मच गया है । सती-यज्ञ की तैयारियां हो रही हैं । सुहाग के चिन्हों और रत्न-आभूषणों से रानियों का पूर्ण शृंगार हो रहा है । वे सिर धुन-धुन कर, केश नोंच-नोंच कर विलाप कर रही हैं । अपने आभूषण उतार-उतार फेंक रही हैं । वह शृंगार उनकी मृत्यु की तैयारी है । परन्तु महाराजा बने युवराज और मंत्रियों की आज्ञा है कि सती यज्ञ के लिये सब राजमाताओं का शृंगार हो ।

देखा—पटरानी राजमाता चेहरे की झुर्रियों में आंसू भरे, दांत टूटे हुये जबड़े फैलाये, केश गूंथती दासियों के हाथ से अपने पके केस बार-बार खींच चीत्कार कर रही हैं—"हाय मेरे पेट से जन्मा बेटा मेरा काल हो रहा है ! हाय मैंने बीस बरस से उसके पिता को देखा नहीं ! हाय जिन सौतों के महलों में वह रहता था, उन्हें ले जाओ । मैं तो कभी की रांड हो चुकी थी ।"

पचीस-तीस बरस की दो जवान रानियां आंखों में खून भरे, क्रोध से शृंगार करने वाली दासियों को मारने और नोचने के लिये झपट रही हैं । उनके हाथ-पांव बांध कर शृंगार की व्यवस्था की जा रही है । एक अति वृद्धा दासी ने दूसरी दासियों को आज्ञा दी—"प्यास लगने पर रानियों को जल के स्थान पर तीव्र मद पीने को दो ।"

कुछ रानियां गुमसुम हो घुटनों पर सिर रखे भय से कांप रही हैं और एक अठारह वर्ष की अत्यन्त सुन्दर रानी बेबस हो फफक-फफक कर रो रही है ।

कुछ समय बाद देखा—वे कभी चीत्कार करती हैं और कभी हंसती हैं। उन्हें और मद पिलाया जा रहा है। सबको मद पिलाया जा रहा है। उस उन्मत्त अवस्था में सबका शृंगार हो गया।

देखा—महल के आंगन में डोलियां सज रही हैं। मत्त रानियों को लेकर डोलियां चलीं। डोलियों के साथ ढोल, नगाडे, तासे, तुरही और दूसरे बाजे बजते जा रहे हैं। मैं सोच रहा हूं, क्या यह बाजे रानियों के भय के चीत्कार और विलाप की पुकारें दबा देने के लिये हैं?

देखा—सतियों के टियाले पर कई कदम लम्बी एक चिता चुनी गई है। रानियों की डोलियां चिता के चारों ओर रखी गई हैं। तलवारें और भाले लिये सशस्त्र योद्धा चिता को घेरे खड़े हैं। नगाड़े और बाजे जोरों से बज रहे हैं। रानियों को उठाकर मध्य में रखी महाराज की अर्थी के चारों ओर बैठाया जा रहा है। उनमें से कोई प्रसन्नता से खिलखिला रही है, कोई उदास और चुप है, कोई अपने स्वर्गीय महाराज की स्मृति में आंसू बहा रही है।

देखा—चिता में आग दे दी गई। अर्थी के चारों ओर बैठी रानियां विचलित हुईं। योद्धा सतर्क हो अपने शस्त्र लिये चिता की ओर लपके! एक चीत्कार, नगाड़ों और बाजों की आवाजें!.....आकाश चूमती लपटें!

एक सिहरन से दृष्टि उस ओर से हटा गुजरी बुर्जी की ओर कर ली। हृदय धड़क रहा था। धुंधली चांदनी में बुर्जी कांपती हुई सी दिखाई दी। चांदनी रात का कोहरा उसके चारों ओर लिपटने लगा और वह एक किले या राजमहल की दीवार की भांति विशाल बन गई। दीवार के नीचे भाले तलवार लिये सैनिक पहरा दे रहे थे। दीवार में एक खिड़की खुली। एक सुन्दरी का मुख, दूध के झाग के समान शुभ्र और फूल की कोमलता और लुनाई लिये दिखाई दिया—खिड़की से एक रस्सी लटक गई। रस्सी के सहारे वह सुन्दरी उतर आई। महल के एक युवक नौकर के गले में बांह डाल सुन्दरी ने कहा—"प्यारे!"

युवक भय से कांप उठा—"महारानी!" उसने आंखें झुका लीं।

"रानी नहीं," सुन्दरी ने उत्तर दिया, "मैं महाराज की कैदिन हूं। पेड़ की डाल से मुझे तोड़, चख कर उन्होंने एक ओर रख दिया परन्तु मैं भी कुछ हूं। मेरी जरूरतें हैं। प्यारे, तुम्हारे लिये सब खतरे झेलती हूं।" एक दूसरे के श्वास में श्वास लेते वे दोनों कांप रहे थे।

गुजरी रानी ने कहा—"प्यारे, जान के मोल यह प्यार है। इसमें दगा नहीं है। रानी का प्यार नहीं, गुजरी का प्यार है।"

देखा—सहसा लोग दौड़ पड़े। मशालें और हथियारों की चमक। गुजरी रानी के देखते-देखते उसके प्रेमी का सिर धड़ से अलग हो गया।

गुजरी का दूध के झाग के समान शुभ्र और चम्पा का लावण्य लिये चेहरा सहसा संगमरमर की मूर्ति की तरह निश्चल हो गया। एक डोली में उसे डाल कर लोग ले चले। सतियों की टियाले की ओर नहीं, दूसरी चोटी पर।

मर कर भी वह गिर नहीं पड़ी। खड़ी रही। सीधी खड़ी रही। उसके चारों ओर बड़े-बड़े पत्थर के टुकड़े चूने से जोड़ कर बुर्जी चुन दी गई। बुर्जी के ऊपर छोड़ दिये गये छेद से एक तीखी चीख निकल पड़ी, जैसे बिलकुल समीप ही रेल के इंजन के चीख पड़ने से कान फट से जाते हैं। शरीर सिहर उठा परन्तु रेल तो चम्बा से एक सौ मील से अधिक दूर है। सोचा, क्या हो रहा है।

दृष्टि सतियों के टियाले की ओर गई। प्रज्वलित विराट चिता में रानियां बिलख कर, सिर पीटती, चीत्कार करती दिखाई दीं। बुर्जी के छेद से इंजन की चीख से निकलता भाप दिखाई दिया और कान फटे जा रहे थे।

सतियों के टियाले और गुजरी की बुर्जी के बीच महाराज दिखायी दिये, अनेक रानियों से घिरे। कुछ की डोलियां सती के टियाले की ओर चल दीं और एक डोली बुर्जी की ओर—

अपना सिर हिलाकर सोचा—क्या है यह सब ?.....मास्टर ने कहा था—"वहां छल बहुत होता है।"

शरीर में कमजोरी मालूम दी। नदी पार सियार ऊंचे स्वर में 'हुआं-हुआं कर रहे थे। शीत की सिहरन अनुभव हुई परन्तु माथे पर पसीना आ रहा था।

मैं उठा और गुरुद्वारे की अंधेरी कोठरी में शरण पाने के लिये लम्बे कदम उठाता चल दिया।

घोड़ी की हाय

जिले में नये सेशन जज के आने से शहर के वकीलों में उत्सुकता और आशंका मिली सनसनी सी फैल रही थी। वकालत के पेशे में सफलता के लिये कानून का गहरा ज्ञान तो आवश्यक है ही परन्तु उस ज्ञान का उचित उपयोग कर सकने के लिये जज के स्वभाव और प्रकृति का परिचय भी कम आवश्यक नहीं। यदि मवक्किलों के मन में भ्रम बैठ जाय कि जज साहब अमुक वकील को पसन्द नहीं करते तो बार-एसोसिऐशन की पूरी लायब्रेरी रट लेने पर भी वकील साहब की वकालत चमक नहीं सकती। इसलिये के० एस० रंधीरा, आई० सी० एस० के शहर में आने पर वकील लोग अनेक उपायों से उनके पिछले इतिहास, स्वभाव और प्रकृति के परिचय की खोज में थे।

रंधीरा साहब अपने मौन और एकान्तप्रियता के कारण किसी अत्यन्त महत्वपूर्ण परन्तु दुर्बोध शिलालेख की भांति निश्चल और जटिल बने थे। वकील लोगों ने सौजन्य के आवेश में जज के अर्दलियों को पान खिलाये, अपने हाथों सिगरेट पेश किये परन्तु कुछ जान नहीं पाये। अदालत के समय के पश्चात् भी रंधीरा साहब अपने स्टैनो को रोके बैठे रहते। बंगले पर लौटते समय फैसले लिखने के लिये फाईलें साथ ले जाते। सिगार पीते हुये आते। कोर्ट के दरवाजे पर सिगार मुख से हट जाता। नाश्ते की छुट्टी के समय फिर सिगार जलता और फिर अदालत समाप्त होने पर वही सिगार, और कुछ नहीं। न क्लब, न कहीं सोसायटी में आना-जाना। उन्हें कोई कुछ जान पाता तो कैसे? और परिचय करने का यत्न करता तो कहां?

मिसेज रंधीरा इतनी आत्मतुष्ट और एकान्त प्रिय न थीं। कालिज में पायी

शिक्षा के उपयोग के लिये उन्हें गृहस्थ की सीमा के भीतर पर्याप्त अवसर भी न था। एक सामाजिक प्राणी की हैसियत से समाज में अपने स्थान और समाज के प्रति कर्तव्य दोनों का ही उन्हें खयाल था। गृहस्थ के कर्तव्य के प्रति भी उपेक्षा न थी। दो बच्चे थे पाली और रंजू वे आया के सुपुर्द थे। रसोई खानसामा के हाथ में और सफाई बैरा के। यह लोग गृहस्थ की देख-रेख करते थे और मिसेज रंधीरा इन लोगों के काम की।

अक्टूबर के आरम्भ में ही रंधीरा साहब ने चार्ज लिया था। कुछ दिन बाद ही शहर में 'जच्चा-बच्चा की हिफाजत करने वाली कमेटी' (मेटर्निटी वेलफेयर) की ओर से एक बच्चों का मेला या प्रदर्शिनी हुई। जनवरी में कुत्तों की प्रदर्शिनी हुई, मार्च में फूलों की। मिसेज रंधीरा ने समाज हित के इन सभी कामों में सहयोग दिया परन्तु इन कामों के कर्ता-धर्ता और प्रबन्धक पहले से मौजूद थे। 'जच्चा-बच्चा की हिफाजत कमेटी' की प्रधान डिप्टी कमिश्नर साहब की मेम साहबा थीं। कुत्तों की प्रदर्शिनी का काम कई वर्ष से असिस्टेंट चीफ सेक्रेटरी की मेम साहबा के हाथ में था और फूलों की प्रदर्शिनी लेडी बाजपेयी करवा रही थीं। पर्दा-बाजार भी वर्ष में दो बार लगता था और उसकी कमेटी की प्रधान लेडी करामतुल्ला थीं।

जहां चाह वहां राह या लगन होने पर अवसर भी आ ही जाता है। मिसेज रंधीरा ने भी अपने सेवा-भाव के लिये मार्ग ढूंढ़ निकाला। उन्होंने 'एस० पी० सी० ए०'—सोसायटी फार दी प्रवेंशन आफ क्रुयल्टी टू एनीमल्स (पशु निर्दयता निवारक समिति) का काम संभाल लिया। काम जितना कठिन था उतना ही उसका क्षेत्र भी विस्तृत था और इस कर्तव्य को पूरा कर सकने के लिये अधिकार और सरकार की सहायता की भी आवश्यकता थी।

मिसेज रंधीरा ने डिप्टी कमिश्नर से मिलकर करुण शब्दों में ऐसे महत्व-पूर्ण काम के प्रति सरकार की सहायता के लिये प्रार्थना की। पुलिस के डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट उनके बंगले पर उनसे मिलने आये। सप्ताह नहीं बीता था कि शहर के चौराहों पर सफेद कपड़ों पर लाल अक्षरों में s. p. c. a. का पट्टा बांधे पुलिस के सिपाही दिखाई देने लगे। जिला अदालत के वकीलों को इस शुभ कार्य के प्रति प्रेरणा और उत्साह हुआ। संध्या समय फुर्सत होने पर अनेक वकील भी काली अचकन या कोट की आस्तीन पर s. p. c. a. का पट्टा बांधे, पुलिस कांस्टेबिल को साथ लिये चौराहों और सड़कों पर इक्के,टांगे

के घोड़ों और टट्टुओं की दयनीय अवस्था के प्रति परेशान दिखायी देने लगे। टांगे, इक्के, ठेले और बैलगाड़ियां रोक ली जातीं। जानवरों के साज और तांगे खुलवा कर जानवरों की पीठ और सीने की जांच की जाती कि कहीं घाव तो नहीं है ? जानवर बहुत बूढ़े तो नहीं हैं ? वे भूखे तो नहीं रखे जाते ? कई ठेले, इक्के, टांगे वालों और खच्चर-गधों पर लदाई करने वालों का चालान पशुओं के प्रति निर्दयता के अपराध में होने लगा। जो बेचारे बेजुबान हैं उन के प्रति मनुष्य ही दया नहीं करेगा तो वे स्वयं तो कुछ कह नहीं सकते ! मिसेज रंधीरा के प्रयत्न से डिप्टी कमिश्नर साहब का हुकुम हो गया कि मई-जून के महीनों में दिन के ग्यारह बजे से चार बजे तक भैंसों को ठेलों में नहीं जोता जा सकता। भगवान की मूक सृष्टि के प्रति न्याय का यह कठिन काम कंधों पर ले मिसेज रंधीरा को परिश्रम भी कम न करना पड़ता। दोपहर की चटकती धूप में वे काली ऐनक लगा मोटर में निकलतीं और चौराहों पर देख आतीं कि सिपाही लोग पशुओं के प्रति अन्याय रोकने के लिये धूप में सावधान खड़े हैं या नहीं ? सिपाही भी उन की गाड़ी और उन्हें पहचान गये थे। उन्हें देखते ही एड़ी से एड़ी ठोंक 'सलूट' करते।

शहर में ऐसे ज़ालिम इक्के वाले भी थे जो बकरी के कद के टट्टू के पीछे किसी तरह दो पहिये बांध उस पर एक पटड़ा जमा, शरीफ़ आदमियों को परेशान कर, अपने बाल-बच्चों का पेट भरने के लिये ही इक्का चलाते थे। उन्हें सवारी के समय और आराम का कुछ भी विचार न था। ऐसे समय में जब चना रुपये का अढ़ाई सेर भी न मिले, यह लोग घोड़े को दाने और निहारी की जगह चवन्नी की गोली खिला कर अफ़ीम की पिनक में हरदम सड़क पर चलता बनाये रखते हैं। उन के लिये घोड़े जानवर नहीं, केवल इकन्नियां-दुअन्नियां खींचने की मशीन थे।

मिसेज रंधीरा की पशुओं के प्रति करुणा से ऐसे बीसियों पीड़ित घोड़े हैवानों के हस्पताल में खड़े हरी-हरी घास खाने लगे और इस पास का खर्चा जुर्माने के रूप में उन पापी इक्के वालों को महाजन से कर्ज़ लेकर जुटाना पड़ता। स्वयं भूखे रहकर और अपने बाल-बच्चों को भूखा देख कर इन दुष्ट इक्के वालों को भगवान की न्याय की शक्ति को स्वीकार करना पड़ता।

× × ×

एडवोकेट पी० एन० खरे की वकालत पिछले सेशन जज साहब के अमल में अच्छी जम गयी थी। उन जज साहब का तबादला हो गया। मि० खरे अपने पांव जमाये रखने के लिये चिंतित थे। साथी वकीलों की भांति उन्हें भी रंधीरा साहब के स्वभाव, प्रकृति के परिचय की खोज थी।

मि० खरे की साली उमा ने उसी वर्ष काशी विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास की थी। हवा बदली के लिये वह कुछ समय के लिये बहिन के यहां आई हुई थी। समाज में स्त्रियों की स्थिति और अधिकार के प्रश्न पर जीजा-साली में प्रायः ही बहस, नोक-झोंक और मजाक चलता रहता। मि० खरे की दलील थी :—स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध खेत और किसान का है। एक के बिना दूसरे का निर्वाह नहीं परन्तु स्थान दोनों का भिन्न-भिन्न है। उमा ऐसी बात से चिढ़ जाती। उस का विश्वास था :—स्त्री के लिये गृहस्थ की चारदीवारी के बाहर भी बहुत कुछ करने को है। प्रमाण के लिये उन्होंने मिसेज़ रंधीरा का नाम लिया।

उमा के मुख से मिसेज़ रंधीरा का नाम सुन मि० खरे के मस्तिष्क में बिजली सी कौंध गई। जैसे अदालत में बहस के समय अपने हारते हुये मुकद्दमे के समर्थन में कानून का कोई बहुत प्रबल दांव सूझ जाय। क्षण भर गम्भीर रह, मजाक की बहस भूल उन्होंने कहा—"हां तो मिसेज़ रंधीरा से मिलती क्यों नहीं? उनके साथ मिल कर काम करो न?···हम चल कर उन से तुम्हारा परिचय करा देंगे।" सेशन जज साहब के समीप पहुंचने का इतना सरल उपाय खोज पाने से मि० खरे का मन उत्साहित और प्रफुल्लित हो उठा।

उसी सप्ताह के रविवार की संध्या मि० खरे अपनी साली को मोटर में ले, मिसेज़ रंधीरा से परिचय कराने के लिये सेशन जज साहब के बंगले पर पहुंचे। बंगले में घुसते ही विचित्र दृश्य दिखाई दिया :—

जून महीने का सूर्य मध्याकाश से गिर क्षितिज के वृक्षों की चोटियों में उलझ निस्तेज होने लगा था। बंगले के पश्चिम ओर अभी धूप थी परन्तु पूर्व की ओर के लान में छाया हो गयी थी। उस छाया में मिसेज़ रंधीरा एक नौकर और एक पुलिस कांस्टेबल की सहायता से एक मरियल टट्टू की सेवा में व्यस्त थीं।

कुछ दूरी पर रंधीरा साहब दांतों में सिगार दबाए इस दृश्य को ध्यान से देख रहे थे। उनके समीप एक सब इंस्पेक्टर निहायत अदब से खड़े थे। मि० खरे भी ड्योढ़ी के एक ओर अपनी गाड़ी खड़ी कर उमा को ले वहीं एक

ओर जा खड़े हुये। मिसेज़ रंधीरा ने अपनी इस विचित्र व्यस्तता के लिये सौजन्यता से मुस्कराकर क्षमा चाही और फिर उसी काम में लगी रहीं।

दो बाल्टियों में 'पोटाशियम-परमेंगनीज़' घुला बैंजनी रंग का जल भरा था। नौकर मिसेज रंधीरा की हिदायत के अनुसार लोटे भर-भर कर वह दवाई मिला जल टट्टू की छिली और सड़ी हुई पीठ पर छोड़ रहा था। जल की धारा गिरने से उस घाव से पीप-खून घुल कर बह रहीं थी। उस पीड़ा से टट्टू नीचे फैल गये जल में अपने सुम पटकने लगता। उन छींटों से घबराकर मिसेज रंधीरा फुर्ती से पीछे हट जातीं और फिर करुणा से विवश हो, एक हाथ से साड़ी संभालतीं, टट्टू की चिकित्सा के लिये आगे बढ़, नाक पर रूमाल रख घाव को ध्यान से देखने लगतीं। गरमी में और इस कठिन परिश्रम से आने वाले पसीने के उपाय के लिये एक ओर स्टूल पर बिजली का पंखा चल रहा था परन्तु मिसेज रंधीरा के माथे पर पसीने की बूंदें छलक आई थीं। घाव धुल जाने के बाद उन्होंने साहब से राय ली—"मर्कोक्रोम लोशन है, वही लगा दें?" साहब ने केवल सिर हिलाकर अनुमति दे दी।

समझा देने से नौकर भीतर जा सुर्ख दवाई की एक शीशी और मलमल का एक टुकड़ा ले आया। मिसेज रंधीरा ने मलमल का टुकड़ा मर्कोक्रोम में भिगो, जानवर की उद्दण्डता की चिन्ता न कर स्वयं उसकी पीठ पर फैला दिया।

इसके बाद उन्होंने सब उपस्थित सज्जनों को अंग्रेजी में सुनाया—"लू और धूप में इस ज़रा से जानवर को इक्के में जोत उसमें तीन भारी-भारी आदमी असबाब सहित बैठे थे और इक्केवाला इसे निर्दयता से पीट रहा था। देखिये तो बेचारा कितना इन्नोसेंट (मासूम) है···पुअरथिंग" (गरीब बेचारा)! उनके स्वर और चेहरे की रेखाओं में पिघलाहट सी आई—"देखिये, बेचारे मूक पशुओं के साथ कितनी क्रूरता और अन्याय होता है? हम चाहते हैं, ईश्वर हम पर दया करे! परन्तु ईश्वर हम पर दया कैसे करे, जब हम पशुओं के प्रति इतने क्रूर हैं।"

साहब ने संक्षेप में अनुमोदन किया। मि० खरे ने मिसेज रंधीरा की बात का और अधिक समर्थन कर करुणा से विगलित स्वर में कहा—"गरीब मूक पशु अपने प्रति अन्याय के विरोध में आवाज भी तो नहीं उठा सकते? और यह पशु ही मनुष्यों का पालन करते हैं। इन गरीबों के प्रति क्रूरता करके मनुष्य अपने आपको इन पशुओं से भी नीचे गिरा देता है। ऐसे मनुष्य को तो

ऐसा दण्ड मिलना चाहिये कि दूसरों को भी नसीहत हो !"

प्रश्न हुआ कि इस टट्टू का अब क्या हो ? आखिर उसे पुलिस कांस्टेबल के साथ हैवानों के हस्पताल भिजवा दिया गया ।

इतनी देर तक दूसरे काम में व्यस्त रहने के लिये मिसेज रंधीरा ने मि० खरे और उमा से फिर क्षमा मांगी और हाथों में गुलाबी रंग की दवाई के दाग लगे ही वह उनसे बातचीत करने के लिये बरामदे में पड़ी कुर्सियों पर आ बैठी ।

मि० खरे ने उमा का परिचय दिया—इन्होंने इसी वर्ष बनारस यूनिवर्सिटी से एम० ए० की परीक्षा पास की है । इनका विचार अपना कुछ समय सामाजिक सेवा के लिये देने का है । इसलिये मैंने उचित समझा कि यह आपके परामर्श के अनुसार चलें । शहर भर में आपके काम को कौन नहीं जानता ? आपका अनुभव, योग्यता और शिक्षा स्त्रियों में तो एक प्रकार से आदर्श ही समझिये ।

"ओह, नाट एट आल !" संकोच से मिसेज रंधीरा ने कोमल विरोध किया, "नहीं-नहीं, ऐसी क्या बात है ? मैं तो जी यह समझती हूं कि स्त्रियां जरा हिम्मत करें तो बहुत कुछ कर सकती हैं ।···समाज की अवस्था ही एकदम बदल जाय !" और अनुमोदन के लिये उन्होंने उमा और खरे की ओर देखा ।

उमा संकोच के कारण चुप रही परन्तु मि० खरे ने उत्साह से समर्थन किया—"इसमें क्या सन्देह ! स्त्रियां ही तो हमारे समाज के पहिये की धुरी हैं ।"

"हां तो इट इज एक्सलेंडिड आइडिया ।" (आपका विचार बहुत अच्छा है) मिसेज रंधीरा ने उमा को सम्बोधन किया, "आप जरूर काम कीजिये । मैं सब तरह से आपकी सहायता करने के लिये तैयार हूं ।·····अब यह काम देखिये न, पशुओं के प्रति निर्दयता निवारण का ! पुरुष इसे कभी उतनी अच्छी तरह नहीं कर सकते ।" हाथ की उंगलियों के संकेत और मुख पर करुणा के भाव से वे बोलीं, "स्त्रियों का दिल अधिक कोमल होता है न ?" उन्होंने मि० खरे की ओर देखा ।

"निस्सन्देह, निस्सन्देह !" खरे ने समर्थन किया ।

सेशन जज साहब के यहां से लौटने पर उमा विशेष प्रसन्न थी । पुरुषों के मुकाबिले में स्त्रियों की समानता ही नहीं बल्कि श्रेष्ठता मिसेज रंधीरा के फैसले से प्रमाणित हो चुकी थी । वह चाहती थी जीजा जी अब बहस करें तो खबर लूं परन्तु मि० खरे को बहस के लिये अवसर न था । लौट कर कपड़े

बदलने से पहले ही अपने मकान के सामने ठेकेदार सरदार बलवीरसिंह के यहां जाकर उन्होंने सेशन जज साहब के यहां जाने और वहां देखी घटना का पूरा विवरण सुनाया और फिर रंधीरा साहब और मिसेज रंधीरा से जो बहुत देर तक उनकी बहस होती रही, उसका भी सब हाल सुनाया। सरदार साहब के यहां से उठे तो अपने मकान की बगल में सेक्रेटेरियेट के बड़े बाबू मि० ए० हुसैन को भी वह वृत्तान्त सुना आये।

कुछ समय में आस-पास समाचार फैल गया। कई लोग पूछने आये कि सेशन जज के यहां कैसे गये थे, क्या-क्या बात हुई? मि० खरे बार-बार वह वृत्तान्त और अधिक ब्योरे से सुना रहे थे। बातें समाप्त होने में ही न आती थीं। भीतर भोजन ठण्डा होने की चिन्ता में उमा की जीजी कुढ़ रही थीं और उमा दिल ही दिल में घुट रही थी कि आज जीजा जी बहस करें तो बताऊं।

भीतर से बार-बार संदेश आने पर मि० खरे भोजन के लिये उठने को हुये तो सरदार साहब एक और पड़ोसी के साथ आ पहुंचे—"मि० खरे कुछ सुना?.....अरे पड़ोस में कत्ल हो गया!"

सरदार साहब को कुर्सी देना भूल मि० खरे की आंखें फैली रह गयीं—"कहां?"

"यहीं, यह जो पीछे हमारा अहाता है, उसके साथ ही। किसी इक्केवाले ने अपनी बीवी का सिर फोड़ दिया। पुलिस उसे गिरफ्तार करके ले गई है।" सरदार साहब स्वयं ही कुर्सी खींच बैठ गये। ए० हुसैन ने पूछा, "कैसे हुआ? क्या औरत बदचलन थी, या कुछ और मामला था।"

सरदार साहब ने बताया—"नहीं, शायद वही इक्के वाला था, जिसकी घोड़ी सेशन साहब की मेम साहबा सड़क से खुलवा ले गयीं। पुलिस वाले उसे चालान के लिये चौकी ले गये। जो कुछ वह दिन भर में कमा पाया था सो पुलिस वालों ने झाड़ लिया। जो पूजा हुई हो सो अलग। पुलिस चौकी का तो नियम ठहरा कि प्रसाद पाये बिना कोई जा न पाये। पांच-दस जूते तो लग ही जाते हैं। बेचारा घोड़ी की जगह इक्के को तीन मील धूप-लू में खींचता घर पहुंचा तो बीवी सिर पर सवार हो गई। सुनते हैं, आया तो उससे लड़ने लगी कि तू घोड़ी कहीं बेच आया है। उसने पीने को पानी मांगा तो बोली—"पानी देती है मेरी जूती!".....ताव में आ गये मियां। नजदीक ईंट पड़ी थी, उठाकर चुड़ैल का सिर कूटने लगे और वह मुंह बाये रह गई। तब मियां

भी सिर थामकर बैठ गये। पुलिस आई और हथकड़ी डालकर ले गई है।··· मियां की बुढ़िया मां है। मियां तो अब क्या बचेंगे! हां बुढ़िया की हांडी-परात बिक जायगी। एक कच्चा मकान है उसका।"

आर० डी० मिश्रा भी मि० खरे के पड़ोस में ही जूनियर वकील हैं, बोले—"दफ़ा ३०२ तो क्या ३०४ ही लगेगी।"

"यह तो गवाही और पुलिस पर निर्भर करता है।" विचार में डूब दीवार की ओर देखते हुये खरे बोले, "बीबी से कोई शिकायत चली आती हो?··· ३०४, ३७७, ३०२ कोई भी दफा लग सकती है।"

मिश्रा ने फिर कहा—"कल्पेब्ल होमी साइड (दण्डनीय नर हत्या) तो है ही।"

खरे फिर उसी मुद्रा में बोले—"है भी, नहीं भी हो सकती है। प्रोवोकेशन के सर्कमस्टांसिस (उत्तेजना की परिस्थिति) प्रमाणित हो जाने पर साफ़ छूट जाय।"

"हां," सरदार साहब ने कहा, "जज पर है भाई। जैसा समझ में आ जाय! केस तो सेशन में रंधीरा साहब के यहां ही जायगा।"

"सो तो है।" सिर हिलाकर मि० खरे ने अनुमोदन किया।

शकूर और उसकी घोड़ी के मामले में अदालत का और भगवान का न्याय एक दूसरे का अनुमोदन कर एक साथ चला। शकूर की घोड़ी हैवानों के हस्पताल में हरी घास खाती हुई इलाज कराती रही और शकूर हवालात में सड़ता रहा। इलाज होने के बाद घोड़ी की खुराक का खर्चा देने का सामर्थ्य शकूर की माँ में न था। घोड़ी को सरकार ने पन्द्रह रुपये में नीलाम कर दिया। मैजिस्ट्रेट ने कच्ची पेशी में पुलिस की गवाही के आधार पर दफ़ा ३०४ लगाकर शकूर का मामला सेशन जज की अदालत के सुपुर्द कर दिया।

शकूर की बुढ़िया मां ने आकर मि० खरे के पांव पकड़ लिये—"हुजूर वकील साहब, मेरे बुढ़ापे की लाठी, मेरे लड़के को बचाइये। उम्र भर हुजूर की जूतियां उठाऊंगी।"

× × ×

जैसे दूकानदार के लिये लक्ष्मी का आशीर्वाद गाहक की प्रसन्नता से प्राप्त

होता है वैसे ही वकील के लिये लक्ष्मी का निवास मुवक्किल की कृपा में है। परन्तु जिस गाहक या मवक्किल से लक्ष्मी स्वयं रूठी हों उस को सेवा दूकानदार या वकील क्या करे ? और फिर जिस मामले में स्वयं न्यायकर्ता की पत्नी की अप्रसन्नता का भय हो ! कोई अच्छा समझदार वकील यह मामला हाथ में लेने को तैयार न हो रहा था। परन्तु जब शकूर की बुढ़िया मां नसीरन ने अपना कच्चा मकान मय आधा बीघा जमीन के ६०० रू० में मि० खरे की माता के हाथ बेच कर उन की फ़ीस पेशगी दे दी तो न्याय की रक्षा अपना कर्तव्य समझ मि० खरे भय का सामना करने के लिये अदालत के अखाड़े में खड़े हो गये।

चार महीने बाद शकूर का मामला सेशन जज रंधीरा साहब की अदालत में पेश हुआ। हत्या का घटना को सन्दिग्ध प्रमाणित करने की चेष्टा मि० खरे ने न की। शकूर की मां का आंखों देखा बयान, उस के अंगूठे के निशान साहित पुलिस की गवाही में मौजूद था। सफ़ाई की दलील का आधार अभियुक्त की प्रबल मानसिक उत्तेजना और क्षणिक पागलपन के अतिरिक्त और कुछ न हो सकता था। सेशन जज साहब के मन से शकूर के निर्दय और क्रूर होने की धारणा को दूर करना ही सब से आवश्यक था। अदालत के सामने मि० खरे ने सफ़ाई आरम्भ की :—

"माननीय अदालत इस समय अभियुक्त की स्त्री की हत्या की घटना पर विचार करने के लिये प्रस्तुत है। किसी अन्य घटना का उल्लेख करना इस समय अप्रासंगिक समझा जा सकता है। परन्तु जीवन की घटनायें अदृश्य सूत्रों से गुथी रहती हैं। एक घटना दूसरी घटना के लिये परिस्थिति बन जाता है। अभियुक्त की स्त्री की हत्या भी एक दूसरी घटना की परिस्थिति में हुई···" मि० खरे ने अदालत के सम्मुख जून मास की एक प्रचण्ड दोपहर का चित्र खींचा—"हालत से मजबूर अभियुक्त अपनी मृतक पत्नी के दो बच्चों और अपनी बूढ़ी मां का पेट दो मुट्ठी अन्न से भरने के लिये उस लू और धूप में निकला था। अपनी बूढ़ी और जख्मी घोड़ी का पेट भरने का प्रश्न भी उस के सम्मुख था। अपनी घोड़ी का पेट भी वह घोड़ी के सहयोग से मेहनत किये बिना न भर सकता था। बूढ़ी और जख्मी घोड़ी को इक्के में जोतना क्रूरता और अपराध है इसमें किसी भी सहृदय, शिक्षित व्यक्ति को सन्देह नहीं हो सकता। परन्तु अभियुक्त अपने ज्ञान की सीमा और संस्कारों के आधार पर अपनी घोड़ी का उपयोग अपने परिवार और घोड़ी का पेट भरने के लिये करना क्रूरता और अपराध न समझ

सकता था। अभियुक्त के लिये इस अपराध का दण्ड उसी प्रकार का न्याय था जैसे कोई व्यक्ति पिछले जन्म के अपराध के कारण अंधा या लंगड़ा पैदा हो कर बेबस हो जाता है। अभियुक्त की घोड़ी उससे छिन जाती है।

"अभियुक्त जानवर की जगह जुतकर अपना इक्का तेज लू और सख्त धूप में तीन मील खींच ले जाता है। अदालत हस्पताल के रजिस्टरों में इस बात का प्रमाण पा सकती है कि ३ जून को दोपहर को शहर की सड़कों पर दो व्यक्ति लू का शिकार हुये हैं। जिस अवस्था में अभियुक्त को अपना इक्का खींचकर तीन मील जाना पड़ा, उस पर लू का असर हो जाने के सभी कारण मौजूद थे। डाक्टरों का यह निर्विवाद मत है कि लू का प्रभाव मनुष्य के मस्तिष्क पर ही सब से प्रबल होता है। अभियुक्त यदि लू के प्रहार से गिर नहीं पड़ा तो यह नहीं कहा जा सकता कि उस के दिमाग पर लू का प्रभाव बिलकुल नहीं हुआ। मस्तिष्क की ऐसी अवस्था में अभियुक्त के प्यास से तड़पते घर लौट कर जल मांगने पर उस की स्त्री उस का अपमान करती है, उसे गाली देती है—'पानी देगी तुम्हें मेरी जूती!' इस बात से अनुमान किया जा सकता है कि अभियुक्त किस वातावरण में रहा है और उस के परिवार के संस्कार क्या थे। ऐसी अवस्था में अभियुक्त से जो घटना हो जाती है उसमें उस के विचार या इरादे के लिये कोई अवसर नहीं है। वह स्वयं अपने वस में नहीं है। इस घटना का दायित्व अभियुक्त के विचार और इरादे पर नहीं, परिस्थितियों के संयोग पर है। यदि न्याय के क्षेत्र में उत्तेजना, आकस्मिक घटना का कुछ भी अर्थ है तो इस घटना से अधिक निर्विवाद उदाहरण उत्तेजना और परिस्थिति की विवशता का और नहीं हो सकता। अभियुक्त घटना में केवल निमित्त मात्र बन गया है। इसके साथ ही वह स्वयं ही इस घटनाचक्र का बेबस शिकार भी है। वह अपनी स्त्री को खो चुका है। दण्ड तो उसे परिस्थितियों ने दिया है। वह मनुष्य और समाज की व्यवस्था से दया, सहानुभूति और सहायता का अधिकारी है। दफ़ा ३०४ के अनुसार यह घटना दण्डनीय नरहत्या (कल्पेब्ल होमीसाइड) के क्षेत्र में नहीं आ सकती क्योंकि घटना के समय अभियुक्त अपने आपे में न था। हत्या उस के हाथ से हुई है अवश्य परन्तु उसने हत्या की नहीं। अभियुक्त ही नहीं, कोई भी व्यक्ति ऐसी परिस्थितियों में अपने आपे में नहीं रह सकता था।"

रंधीरा साहब ने संतोष और शान्ति से मि० खरे की करुणापूर्ण सफ़ाई सुनी। एक सप्ताह बाद उन्होंने अपना लिखा हुआ फैसला दिया—"सफ़ाई के योग्य

वकील ने दफ़ा के अन्तर्गत 'दण्डनीय नरहत्या' के इस मामले में बहुत चतुरता से सफ़ाई पेश की है। सफ़ाई का आधार है कि अभियुक्त इस घटना के समय अपने आपे में नहीं था इसलिये घटना का दायित्व उस पर नहीं आता। इस आधार के लिये दो तर्क हैं : प्रथम—जून मास की प्रचण्ड दोपहर में अभियुक्त के दिमाग़ पर गरमी और लू का प्रभाव और इस कारण अभियुक्त का बदहवास हो जाना। अदालत इस सम्भावना से इनकार नहीं करती परन्तु चिकित्साशास्त्र के इस मन्तव्य पर, डाक्टर की गवाही के बिना अदालत एक जघन्य अपराध के लिये यह बहाना स्वीकार कर लेने की जिम्मेवारी अपने सिर नहीं ले सकती। दूसरा तर्क परिस्थितियों से उत्पन्न उत्तेजना है। अदालत योग्य वकील के इस तर्क को स्वीकार करती है कि घटनायें अदृश्य सूत्रों से परस्पर गुथी रहती हैं। स्वयम् घटना के प्रकट रूप का महत्व उतना अधिक नहीं जितना कि घटनाओं का कारण मनुष्य की प्रवृत्तियों पर है। न्याय की रक्षा के लिये इन प्रवृत्तियों का उपाय करना ही अदालत का कर्तव्य है। अभियुक्त का पशुओं के प्रति निर्दयता के अपराध में दण्डित होकर उत्तेजित होना, इस बात का प्रमाण है कि वह प्रवृत्ति से क्रूर है और उस क्रूरता को उच्छृङ्खलता से व्यवहार में लाता है। न्याय और व्यवस्था के विरुद्ध उत्तेजित होने के अधिकार को यदि अदालत किसी भी अवस्था में स्वीकार करे तो न्याय और व्यवस्था का कोई आधार ही शेष नहीं रह जायगा। अभियुक्त की पशुओं के प्रति निर्दयता को यदि उस के संस्कारों के आधार पर क्षमा-योग्य मान लिया जाय तो मनुष्य के संस्कारों को नियंत्रण में रखकर उन्हें सुधारने का सिद्धान्त ही समाप्त हो जाता है। क्या जरायमपेशा व्यक्ति को स्वतन्त्रतापूर्वक जुर्म करने का अधिकार इसलिये दे दिया जा सकता है कि उस के परिवार में ऐसा पेशा चला आया है? अदालत घटनाओं के इस क्रम में अभियुक्त की प्रवृत्ति में क्रूरता और न्याय की व्यवस्था के प्रति तिरस्कार की भावना और संस्कार का प्रमाण पा रही है और उचित दण्ड द्वारा उस का संशोधन आवश्यक समझती है।

"मृतक स्त्री के शरीर की परीक्षा करने वाले डाक्टर की गवाही मौजूद है कि स्त्री के सिर पर केवल एक ही चोट नहीं बल्कि निरंतर अनेक प्रहार किये गये हैं। यह बात हत्या के लिये अभियुक्त के इरादे को निर्विवाद रूप से प्रमाणित कर देती है। अदालत के विचार से इस मामले में अभियुक्त का व्यवहार दफा ३०२ (फांसी की सजा) में भी आ सकता था। परन्तु मातहत अदालत ने दया

दृष्किोण ही उचित समझ कर मामला दफ़ा ३०४ में हमारे सामने भेजा है। दया के उस दृष्टिकोण को विचार में रखते हुये अभियुक्त की क्रूर प्रवृति और संस्कारों को दया का महत्व सुझाने के लिये यह अदालत अभियुक्त को अपनी प्रवृति और संस्कारों में सुधार का अवसर देने के लिये दफा ३०४ के अनुसार उसे केवल पांच वर्ष कड़ी जेल की सजा देती है।"

× × ×

मि० खरे ने शकूर के केस में पैरवी बहुत योग्यता से की थी। बार एसोसिएशन में उन की प्रशंसा भी खूब हुई। परन्तु वह योग्यता किस काम की जिससे मनुष्य अपने पांव में कुल्हाड़ी मार ले? मि० खरे मन ही मन आशंकित थे कि सफ़ाई में शकूर में "पशु निर्दयता निवारक समिति" के मामले का जिक्र करने से सेशन जज साहब और मिसेज रंधीरा जाने क्या समझ जांय?

मि० खरे उसी संध्या उमा को मिसेज रंधीरा से मिलाने के लिये ले गये। स्वयम् ही उन्होंने प्रसंग चलाया—"आज उस इक्के वाले मामले में साहब ने फैसला दे दिया। बहुत रियायत की साहब ने, ३०२ नहीं लगाई, केवल पांच वर्ष की ही सजा दी।"

"अच्छा वह घोड़ी?.....हां, इक्केवाला जिसने अपनी औरत का कत्ल कर दिया था।" घोड़ी के प्रसंग से मिसेज़ रंधीरा के होंठ करुणा से सिकुड़ गये, "देखिये, ईश्वर इसी प्रकार न्याय करता है। वरना बेचारे बेजुबानों का क्या है? समझिये उस घोड़ी की हाय लग गई उस कमबख्त को।"

"बहुत ठीक कहतीं हैं आप!" मि० खरे ने भी संतोष से समर्थन किया, "अन्याय का दण्ड भगवान देते ही हैं, चाहे किसी रूप में दें।"

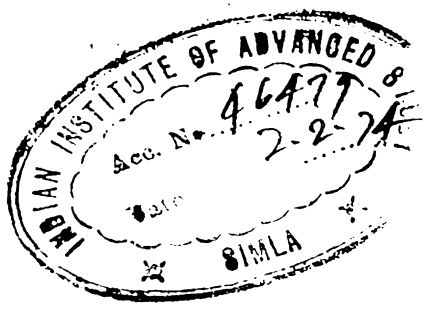
INDIAN INSTITUTE OF ADVANCED STUDY
Acc. No. 4647
2-2-74
SIMLA

यशपाल साहित्य

कहानी संग्रह

अभिशप्त
वो दुनिया
ज्ञानदान
पिंजड़े की उड़ान
तर्क का तूफान
भस्मावृत्त चिन्गारी
फूलों का कुर्ता
धर्मयुद्ध
उत्तराधिकारी
चित्र का शीर्षक
तुमने क्यों कहा था मैं सुन्दर हूं ?
उत्तमी की मां
ओ भैरवी !
सच बोलने की भूल
खच्चर और आदमी
भूख के तीन दिन

राजनैतिक निबन्ध

मार्क्सवाद
रामराज्य की कथा
गांधीवाद की शव परीक्षा

हास्य निबन्ध

चक्कर क्लब
बात-बात में बात
न्याय का संघर्ष
जग का मुजरा

उपन्यास

झूठासच–वतन और देश
झूठासच–देश का भविष्य
मनुष्य के रूप
पक्का कदम
देशद्रोही
दिव्या
गीता
दादा कामरेड
अमिता
जुलैखां
बारह घंटे
अप्सरा का शाप
क्यों फंसें !

नाटक

नशे-नशे की बात !

कथात्मक निबन्ध

देखा, सोचा, समझा !
सिंहावलोकन भाग १
सिंहावलोकन भाग २
लोहे की दीवार के दोनों ओर
राहबीती

Library IIAS, Shimla
H 813.31 Y 26 B
00046479